मूल्य - 25 रुपये

वर्ष-1 अंक-2, अप्रैल-सितम्बर

पारस-परख़ान

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

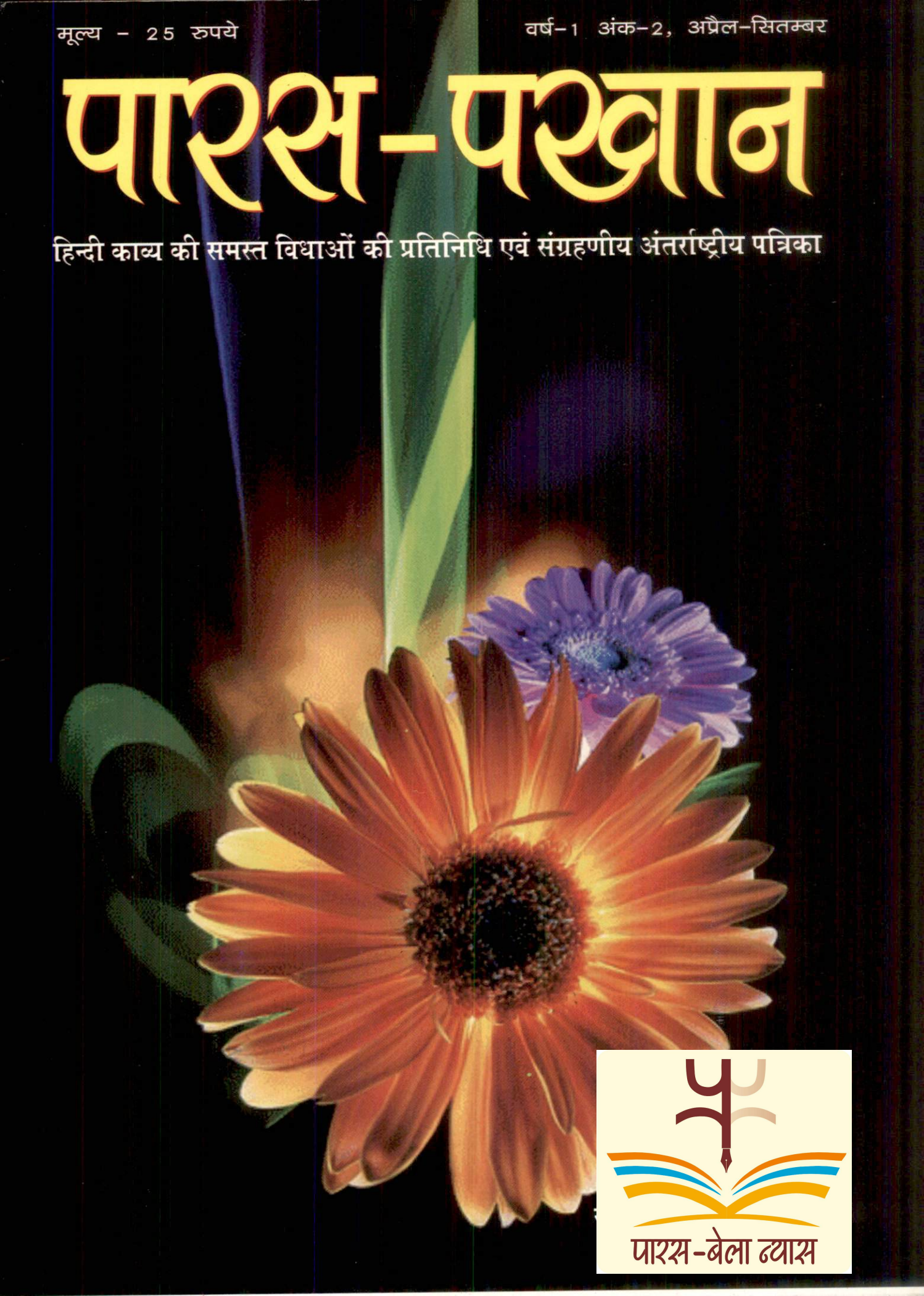

पारस-बेला न्यास

श्री संतोषानंद व डॉ. सुरेश अवस्थी को सम्मानित करते उ.प्र. विधानसभाध्यक्ष सुखदेव राजभर

समारोह में उपस्थित गणमान्य श्रोतागण

अंक-2, अप्रैल-सितम्बर, 2009

मूल्य : 25 रुपए

अनुक्रमणिका

पारस-पखान

(हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि उर्वं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक)

संपादकीय		4
उन जैसा कोई संत नहीं	डॉ. अनिल कुमार पाठक	5
कालजयी		
तथागत बुद्ध	पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	7
ऐ मेरे वतन के लोगो!	पं. प्रदीप	8
विजय मिली विश्राम न...	बलवीर सिंह 'रंग'	9
झंडा ऊँचा रहे हमारा	श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'	10
मोचीराम	सुदामा पांडेय 'धूमिल'	11
मेरा देश जल रहा	डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'	14
समय के सारथी		
ओ वासंती पवन	डॉ. कुंअर बेचैन	16
गांधारी	गिरीश पांडेय	17
वालिद की वफात पर	निदा फाज़ली	19
आदमी के साथ	लक्ष्मीशंकर वाजपेयी	20
भारती पुकारती	शास्त्री नित्यगोपाल कटारे	21
दो नवगीत	अनूप अशेष	22
जिसके भाई सभी...	पवन दीक्षित	23
दो ग़ज़लें	शिव कुमार विलग्रामी	24
सृजनगीत	हेमंत द्विवेदी	25
दोहे	नरेश शांडिल्य	26
साक्षात्कार		
डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल से की बातचीत		27
नारी स्वर		
प्यार बही खातों में	डॉ. सरिता शर्मा	31
प्रवासी के बोल		
कभी रुककर जरूर...	अंजना संधीर (अमेरिका)	32
मैं स्वप्न नहीं तेरा	शैलाभ शुभिशाम (जापान)	33
फिर तेज़ हवा का	अब्बास रजा अल्वी (आस्ट्रेलिया)	34
ग़ज़ल	रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर' (ओमान)	35
अध्यात्म जगत		
गायत्री माता की आरती	एल.एन. शुक्ला	36
शायरों की महफिल		37
पारस-समृति-समारोह की रपट		38
पुस्तक समीक्षा:		
'स्वर बेला'		39
हंसी की कतरनें		41

संपादक
डॉ. सुनील जोगी

सह-संपादक
अमृतेश्वरचरण सरस्वती

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
श्री अभिमन्यु कुमार पाठक;
श्री अरुण कुमार पाठक;
श्री राजेश प्रकाश;
डॉ. अनिल कुमार।

प्रवासी संपादकीय सलाहकार
डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल (नार्वे)

लेआउट टाइपसेटिंग एवं मुख्य-पृष्ठ:
डिज़िटल प्रिंट सर्विसेज,
226/5, रामेश्वर नगर, आज़ादपुर, दिल्ली-33

संपादकीय कार्यालय
आर-101 ए, गीता अपार्टमेन्ट
खिड़की एक्सटेन्शन,
मालवीय नगर
नयी दिल्ली-110017
दूरभाष - 98110-05255

मूल्य : 25 रुपए
वार्षिक : 100 रुपए
पंचवार्षिक : 450 रुपए
आजीवन : 5,000 रुपए
विदेशों में : $ 5
(एक अंक)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. अनिल कुमार द्वारा गर्ग ऑफसेट प्रिंटर्स, बी-34/2, निकट रजवाड़ा व गोला बैंकेट हॉल, जी.टी.करनाल रोड़, इंडस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली में मुद्रित एवं सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड लखनऊ से प्रकाशित।
संपादक - **डॉ. सुनील जोगी**

'पारस-पखान' में प्रकाशित रचनाओं के रचयिताओं के विचार अपने हैं। विवादास्पद मामले लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

संपादकीय

कालजयी रचनाकार पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की पावन स्मृति में प्रकाशित अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी 'पारस पखान' का दूसरा अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत हर्ष है कि सुधी विद्ज्जनों, बुद्धिजीवियों और काव्य-प्रेमियों ने इसके प्रवेशांक को हाथों-हाथ लेकर हमारे छोटे-से प्रयास को हृदय से सराहा। हम सभीजन के आभारी हैं। भविष्य में हम पत्रिका को अधिकाधिक स्तरीय बनाने का संकल्प लेते हुए निरंतर सिकुड़ती जा रही काव्य-गंगा को साहित्यिक प्रदूषण से बचाने का प्रयास करेंगे।

पिछले जून और जुलाई संज्ञक महीने साहित्य-जगत के लिए अपूरणीय क्षति लेकर आए। एक अप्रत्याशित कार-दुर्घटना में काव्य-मंचों के भीष्मपितामह ओमप्रकाश 'आदित्य' हास्य-व्यंग्यकार नीरज पुरी और लाटसिंह गुर्जर का देहावसान हो गया। सुपरिचित व्यंग्यकार पं. ओमव्यास 'ओम' घायल हो गये थे, जो बाद में मौत से संघर्ष करते हुए एक महीने बाद स्वर्ग सिधार गये। सुप्रसिद्ध ग़ज़लगो-शायर अल्हड़ बीकानेरी भी इन कवियों की मौत के सदमे से चल बसे।

विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारतवर्ष में पंद्रहवीं लोकसभा के चुनाव हुए और यू.पी.ए. सरकार पुनः सत्ता में आई तथा डॉ. मनमोहन सिंह पुनः प्रधानमंत्री बने। अमेरिका में अप्रत्याशित सत्ता-परिवर्तन के परिणाम स्वरूप बराक ओबामा अश्वेत राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। समूचा विश्व भीषण आर्थिक मंदी के गुंजलक में छटपटाता रहा, अमेरिका जैसी सुदृढ़ अर्थव्यवस्था की चूलें हिल गईं, लेकिन भारत के कदम मज़बूती से जमे रहे और हमने इस संकट का सामना दिलेरी से किया। विश्व की अमेरिका जैसी महाशक्ति ने भी हमारी अर्थव्यवस्था का लोहा माना।

विश्व में भारतीय फिल्म कलाकारों की प्रतिष्ठा बढ़ी, क्योंकि डैनी बॉयल निर्देशित फिल्म 'स्लमडॉग मिलिनेयर' मे संगीतकार ए.आर. रहमान के गीत 'जय हो' को आस्कर पुरस्कार मिला और यहाँ के बाल-कलाकार सम्मानित हुए। कुल मिलाकर विश्व परिदृश्य पर हमारा देश सशक्त होकर उभरा।

कतिपय कारणोंवश हम यह अंक संयुक्तांक (अप्रैल-सितम्बर, 2009) के रूप में दे रहे है। अंक में स्थायी स्तम्भों के अतिरिक्त हमने एक नया कॉलम 'पुस्तक समीक्षा' शुरू किया है। पाठकों को इससे नयी-नयी काव्य-पुस्तकों की जानकारी मिल सकेगी।

पत्रिका में सम्मिलित सभी रचनाकारों के हम आभारी हैं। हमें विश्वास है कि वे पूर्व की तरह ही हमें सहयोग देते रहेंगे। सृजनधर्मियों से आग्रह है कि वे अपनी रचनाएँ हमें प्रेषित करें, हम उन्हें पत्रिका में सादर स्थान देंगे। सार्थक सुझावों का हम स्वागत करते हैं।

- डॉ. सुनील जोगी

ईमेल- kavisuniljogi@gmail.com

उन जैसा कोई संत नहीं

डॉ. अनिल कुमार पाठक

लोगों को कहते सुना है मैंने,
'बाबूजी' मेरे नहीं रहे।
पर कोई मुझसे नहीं कहे,
'बाबूजी' मेरे नहीं रहे।।

सच है जो उनको पता नहीं,
वे अक्षयवट हैं, लता नहीं।
जो कलवित होकर, काल-
गाल में समा रहे।
पर कोई मुझसे... ।।1।।

वे अनादि हैं, वे अनन्त हैं,
कण-कण व्यापी वे बसन्त हैं।
पीत-पर्ण वे नहीं,
जो पतझड़ में बिखर रहे।
पर कोई मुझसे... ।।2।।

जोड़-जोड़कर बिखरा तिनका,
सृजन-नीड़ का लक्ष्य था जिनका।
ऐसे अजर-अमर सर्जक को
कोई ऐसा नहीं कहे।
पर कोई मुझसे... ।।3।।

आदि, मध्य औ' अन्त नहीं,
उन जैसा कोई सन्त नहीं।
पर-पीड़ा, निन्दा से दूर सदा,
नि:बैरी बन खड़े रहे।
पर कोई मुझसे... ।।4।।

आपसे झुक के जो मिलता होगा
उसका क़द आपसे ऊँचा होगा।
-नदीम

पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

(11/07/1932 से 23/01/2008)

गुरु पूर्णिमा पर जन्मदिवस की विनम्र श्रद्धांजलि

बाबू जी की स्मृतियों को, मेरा शत्-शत् वन्दन है
इस 'पारस-पखान' का अर्पित, शब्द-शब्द का चन्दन है।

तथागत बुद्ध

पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

कौन हो तुम वृक्ष के नीचे अकेले साधना में लीन,
कौन हो तुम सान्ध्य नभ में जलज घन से छीन।
कौन हो तुम डालते मधुमास का उल्लास जग में,
भर रहे हो एक मोहक और मधुमय हास जग में,
कौन हो तुम विश्व-शतदल पर पड़े नव ओस-कण से,
कौन हो तुम राग रंजित छन्द के पहले चरण से।
विश्व की निद्रित निशा में सो रहा जब आज अणु-अणु।
जल रहे हो दीप से तुम छोड़ते मधुमय किरण-कण।

कौन हो तुम विश्व की शय्या सुकोमल छोड़कर,
कौन हो तुम कामिनी के प्रेम से मुंह मोड़कर,
त्याग कर वैभव-धरा का खोजते हो कौन सा धन,
खोजते हो इस निशा में कौन सी उज्जवल किरण-कन।
कौन हो तुम विश्व में छाये दु:खों के मूल पर।
कौन हो तुम आत्मा की चिर भटकती भूल पर।
डालते नव-नव किरण रस का अमित उद्‌भास करके,
कौन हो तुम दे रहे मधुमय कुसुम में हास भरके।

कौन हो तुम तृषित जग की मोह-निद्रित प्यास हरते।
कौन हो तुम बादलों सा प्रेम-रस का जल बरसते।
मुक्ति के आवास हो तुम, साधना के दूत जैसे,
फेंकते हो दो नयन से प्रेम का मधु-सूत जैसे,
कौन हो तुम चन्द्र की मधु रश्मियों सा शीत लगकर
कौन हो तुम रवि-किरण से फेंकते द्युति इस धरा पर,
विश्व की निर्वाण-गति पर कौन सा तू मंत्र पढ़ता
चेतना का हास भर कर दूर करते विश्व जड़ता।।
कौन हो तुम कल्पना सा प्राण में मधु-गान भरते,
कौन हो तुम ज्योत्सना से विश्व का श्रृंगार करते।
कौन हो तुम डालते करुणा-सलिल की धार मन पर
कर रहे मधु-लेप हो तुम तप्त-जीवन के जलन पर
कौन हो तुम फेंकते यश की किरण को इस धरा पर,
कर रहे हो जग प्रकाशित साधना की ज्योति भरकर।
ज्ञान दीपक के किरण से मोह में अवसाद भरते।
कौन हो तुम विश्व में नव-नव कुसुम का हास भरते।

कौन हो तुम चल रहे जग साथ ही पथ पर निरंतर।
युग गया पर तुम अमर हो शान्ति का सन्देश देकर।
कौन हो तुम दे रहे वरदान की द्युतियाँ चिरन्तन।
आज मध्यम मार्ग से ही पा सके कल्याण जन-मन।
कौन हो तुम शान्त रस से हो भिगोते क्लान्त मन को,
चरण-पथ के रेणु छूकर पा सके कल्याण जिससे दीन,
कौन हो तुम वृक्ष के नीचे अकेले साधना में लीन ।

स्व. पं. प्रदीप एक प्रसिद्ध फिल्मी गीतकार थे। शहीदों के सम्मान में लिखे गए उनके गीत ने पूरे देश में प्रसिद्धी पायी। स्वर-साम्राज्ञी लता मंगेशकर के मखमली स्वर में सजे इस गीत को सुनकर आज भी लोग भाव-विभोर हो उठते हैं।

ऐ मेरे वतन के लोगो

पं. प्रदीप

ऐ मेरे वतन के लोगो, तुम ख़ूब लगा लो नारा
यह शुभ दिन है हम सबका लहरा लो तिरंगा प्यारा
पर मत भूलो सीमा पर, वीरों ने हैं प्राण गंवाये
कुछ याद उन्हें भी कर लो, जो लौट के घर ना आये।
ऐ मेरे वतन के लोगो, ज़रा आँख में भर लो पानी
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो क़ुरबानी।

जब घायल हुआ हिमालय, खतरे में पड़ी आज़ादी
जब तक थी साँस लड़े वो, फिर अपनी लाश बिछा दी
संगीन पे धरकर माथा, सो गये अमर बलिदानी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो क़ुरबानी।

जब देश में थी दीवाली, वो खेल रहे थे होली
जब हम बैठे थे घरों में, वो झेल रहे थे गोली
थे धन्य जवान वो अपने, थी धन्य वो उनकी जवानी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो क़ुरबानी।

कोई सिख, कोई जाट, मराठा, कोई गुरखा, कोई मदरासी
सरहद पर मरने वाला हर वीर था भारतवासी
जो ख़ून गिरा परबत पर, वो खून था हिंदुस्तानी
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो कुरबानी।

थी ख़ून से लथपथ काया, फिर भी बंदूक उठा के
दस-दस को एक ने मारा, फिर गिर गये होश गंवाके
जब अंत समय आया तो, कह गये कि अब मरते हैं
खुश रहना देश के प्यारो, अब हम तो सफर करते हैं
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो कुरबानी।

क्या लोग थे वो दीवाने, क्या लोग थे वो अभिमानी
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो कुरबानी
तुम भूल न जाओ इनको, इसलिए कही यह कहानी
जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो कुरबानी

जय हिंद! जय हिंद की सेना! जय हिंद! जय हिंद की सेना!
जय हिंद! जय हिंद!! जय हिंद !!!

गीत-सम्राट और हिंदी ग़ज़ल के जनकों की पंक्ति में अग्रगण्य दादा बलवीर सिंह 'रंग' का जन्म 14 नवम्बर, 1919 को उ.प्र. के एटा जिले के ग्राम नगला कटीला में एक कृषक परिवार में हुआ था। पाँच दशकों तक हिंदी काव्य-मंच पर अपनी रचनाओं से श्रोताओं के दिलों पर राज करने वाले रंगजी कबीर की परम्परा के फक्कड़ और बेलौस कवि थे। उनके 'प्रवेशगीत', 'सांझ-सकारे', 'संगम', 'सिंहासन' और 'गंध रचती छंद' जैसे लोकप्रिय कविता-संग्रह प्रकाशित हैं।

विजय मिली विश्राम न समझो

बलवीर सिंह 'रंग'

ओ विप्लव के थके साथियों!
विजय मिली विश्राम न समझो।

उदित प्रभात हुआ है, फिर भी छाई चारों ओर उदासी
ऊपर मेघ भरे बैठे हैं, किंतु धरा प्यासी-की-प्यासी
जब तक सुख के स्वप्न अधूरे
पूरा अपना काम न समझो।
विजय मिली विश्राम न समझो।

पदलोलुपता और त्याग का एकाकार नहीं होने का
दो नावों में पग रखने से सागर पार नहीं होने का
युगारम्भ की प्रथम चरण की
गतिविधि को परिणाम न समझो।
विजय मिली विश्राम न समझो।

तुमने वज्रप्रहार किया था पराधीनता की छाती पर
देखो आँच न आने पाए जन-जन की सौंपी थाती पर
समर शेष है सजग देश है
सचमुच युद्धविराम न समझो।
विजय मिली विश्राम न समझो।

इस शहर में जीने के अंदाज़ निराले हैं
होठों पे लतीफेहैं, आवाज़ में छाले हैं।
-जावेद अख्तर

अपनी काव्य-रचना 'झंडागीत' को लिखने वाले श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' जी स्वतंत्रता पूर्व के एक प्रसिद्ध कवि थे। यह अमर रचना आज भी हमारे देश की शान है।

झंडा ऊंचा रहे हमारा

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा
सदा शक्ति बरसाने वाला, प्रेम-सुधा सरसाने वाला
वीरों को हरषाने वाला, मातृभूमि का तन-मन सारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

स्वतंत्रता के भीषण रण में, लखकर जोश बढ़े क्षण-क्षण में
काँपे शत्रु देखकर मन में, मिट जावे भय-संकट सारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

इस झंडे के नीचे निर्भय, हो स्वराज जनता का निश्चय
बोलो भारत माता की जय, स्वतंत्रता ही ध्येय हमारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

आओ प्यारे वीरो आओ, देश-जाति पर बलि-बलि जाओ
एक साथ सब मिलकर गाओ, प्यारा भारत देश हमारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

इसकी शान न जाने पावे, चाहे जान भले ही जावे
विश्व-विजय करके दिखलावे, तव होवे प्रण पूर्ण हमारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

देखें करीब से तो अच्छा दिखाई दे
इक आदमी तो शहर में ऐसा दिखाई दे।
- ज़फ़र गोरखपुरी

प्रसिद्ध जनवादी कवि सुदामा पांडेय 'धूमिल' का जन्म 9 नवम्बर, 1936 को जिला वाराणसी 'उ.प्र.' के ग्राम खेवली में हुआ था। उन्होंने आई.टी.आई. वाराणसी से विद्युत डिप्लोमा पास करके इसी संस्थान में विद्युत-अनुदेशक के रूप में कार्य किया।

उनके लोकप्रिय कविता-संग्रह 'सड़क से संसद तक' और 'कल सुनना मुझे' है। 10 फरवरी, 1975 को ब्रेन ट्यूमर से धूमिलजी का असामयिक निधन लखनऊ में हो गया। उनकी प्रसिद्ध रचना 'मोचीराम' हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं-

मोचीराम

सुदामा पांडेय 'धूमिल'

राँपी से उठी हुई आँखों ने मुझे
क्षण-भर टटोला
और फिर
जैसे पतियाये हुए स्वर में
वह हँसते हुए बोला-
''बाबूजी! सच कहूँ-मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है
और असल बात तो यह है
कि वह चाहे जो है
जैसा है, जहाँ कहीं है
आजकल
कोई आदमी, जूते की नाप से
बाहर नहीं है
फिर भी मुझे ख्याल ये रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे जूतों के बीच
कहीं-न-कहीं एक आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट
छाती पर, हथौड़े की तरह सहता है।

यहाँ तरह-तरह के जूते आते हैं
और आदमी की अलग-अलग नवैयत
बतलाते हैं
सबकी अपनी-अपनी शक्ल है
अपनी-अपनी शैली है
मसलन एक जूता है
जूता क्या है, चकतियों की थैली है
इसे एक आदमी पहनता है
जिसे चेचक ने चुग लिया है
उस पर उम्मीद की तरह देती हुई हँसी है
जैसे टेलीफोन के खंभे पर
कोई पंतग फंसी है
और खड़खड़ा रही है।''

''बाबूजी! इस पर पैसा क्यों फूंकते हो?''
मैं कहना चाहता हूँ
मगर मेरी आवाज़ लड़खड़ा रही है
मैं महसूस करता हूँ-भीतर से
एक आवाज़ आती है-''कैसे आदमी हो?
अपनी जाति पर थूकते हो।''
आप यक़ीन करें, उस समय
मैं चकतियों की तरह आँखें टाकता हूँ
और पेशे से पड़े हुए आदमी को
बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ।

एक जूता और है, जिससे पैर को
बाँधकर एक आदमी निकलता है-
सैर को!
न वह अक्लमंद है
न वक्त का पांबद है
उसकी आँखों में लालच है
हाथों में घड़ी है
उसे जाना कहीं नहीं है

मगर चेहरे पर
बड़ी हड़बड़ी है
यह कोई बनिया है
या बिसाती है
मगर रौब ऐसा कि हिटलर का नाती है
'इशे बाँद्धो, उशे काट्टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पीट्टो
घिस्सा दो, अइशा चमकाओ, जूते को ऐना बनाओ
... ओफ़्फ़! बड़ी गर्मी है
रूमाल से हवा करता है
मौसम के नाम पर बिसूरता है
सड़क पर आतियों-जातियों को
वानर की तरह घूरता है
गरज़ यह कि घण्टे भर खटवाता है
मगर नामा देते वक्त
साफ नट जाता है
''शरीफों को घूरते हो'' - यह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है
अचानक चिहुँककर सड़क से उछलता है
और पटरी पर चढ़ जाता है
चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कहीं-न-कहीं एक चोर कील
दबी रह जाती है
जो मौका पाकर उभरती है
और अँगुली में गड़ती है।

मगर इसका मतलब यह नहीं है
कि मुझे कोई गलतफहमी है
मुझे हर वक्त यह ख्याल रहता है कि
जूते और पेशे के बीच
कहीं-न-कहीं एक अदद् आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट
छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है
और बाबूजी! असल बात तो यह है कि जिंदा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर या रंडियों की
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है
और यही वह जगह है जहाँ हर आदमी
अपने पेशे से छूटकर
भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है

सभी लोगों की तरह
भाषा उसे काटती है
मौसम सताता है
अब आप इस वसंत को ही लो
यह दिन को ताँत की तरह तानता है
पेड़ों पर लाल-लाल पत्तों के हज़ारों सुखतले
धूप में, सीझने के लिए लटकाता है
सच कहता हूँ - उस समय
राँपी की मूँठ को हाथ में सँभालना
मुश्किल हो जाता है
आँख कहीं जाती है
हाथ कहीं जाता है
मन किसी झुँझलाए हुए बच्चे-सा
काम पर आने से बार-बार इन्कार करता है
कोई जंगल है, जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है
और यह चौंकने की नहीं, सोचने की बात है
मगर जो ज़िंदगी को किताब से नापता है।

जो असलियत और अनुभव के बीच
ख़ून के किसी कमज़ात मौके पर कायर है
वह बड़ी आसानी से कह सकता है
कि यार! तू मोची नहीं, शायर है
असल में वह एक दिलचस्प गलतफ़हमी का
शिकार है
जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है
और भाषा पर
आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है

जबकि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती है
सच्चाई–
सबसे होकर गुज़रती है
कुछ हैं, जिन्हें शब्द मिल चुके हैं
कुछ हैं, जो अक्षरों के आगे अंधे हैं
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं
जबकि मैं जानता हूँ कि इन्कार से भरी हुई एक चीख
और 'एक समझदार चुप'
दोनों का मतलब एक है–
भविष्य गढ़ने में, 'चुप' और 'चीख'
अपनी–अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना–अपना फ़र्ज अदा करते हैं।

दिल में ऐसे उतर गया कोई
जैसे अपने ही घर गया कोई।
–सूर्यभानु गुप्त

हिंदी कविता के सुप्रसिद्ध व सशक्त कवि डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म 5 अगस्त 1915 को ग्राम झगरपुर, ज़िला उन्नाव (उ.प्र.) में हुआ था। आपने अपनी उच्च शिक्षा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से पूरी की। आपने अनेक शैक्षिक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों तथा सरकारी हिंदी संस्थानों के उच्चतम पदों पर कार्य किया। अपनी सराहनीय शैक्षिक व साहित्यिक सेवाओं के लिए आप 'पद्मश्री' की उपाधि से सम्मानित हुए। आपके प्रमुख कविता-संग्रह 'प्रलय-सृजन', 'विंध्य हिमालय', 'वाणी की व्यथा', 'कटे अंगूठों की वंदनवारें' आदि हैं।

मेरा देश जल रहा

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'

घर-आँगन सब आग लग रही
सुलग रहे वन-उपवन
दर-दीवारें चटख रही हैं
जलते छप्पर-छाजन
तन जलता है, मन जलता है
जलता जन-धन-जीवन
एक नहीं जलते सदियों से
जकड़े गर्हित बंधन
दूर बैठकर ताप रहा है आग लगाने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

भाई की गर्दन पर
भाई का तन गया दुधारा
सब झगड़े की जड़ है
पुरखों के घर का बँटवारा
एक अकड़कर कहता
अपने मन का हक ले लेंगे
और दूसरा कहता
तिल भर भूमि न बँटने देंगे
पंच बना बैठा है घर में फूट डालने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

होकर बड़े लड़ेंगे यों
यदि कहीं जान मैं लेती
कुल-कलंक-संतान
सौर में गला घौंट मैं देती
लोग निपूती कहते पर
यह दिन न देखना न पड़ता
मैं न बंधनों में सड़ती
छाती में शूल न गड़ता
बैठी यही विसूर रही माँ, नीचों ने धर घाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

भगत सिंह, अशफ़ाक
लालमोहन, गणेश, बलिदानी
सोच रहे होगें हम सबकी
व्यर्थ गई कुरबानी
जिस धरती को तन की
देकर खाद, ख़ून से सींचा
अंकुर लेते समय उसी पर
किसने ज़हर उलीचा
हरी-भरी खेती पर ओले गिरे पड़ गया पाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

जब भूखा बंगाल, तड़प
मर गया ठोंककर किस्मत
बीच हाट में बिकी
तुम्हारी माँ-बहनों की अस्मत
जब कुत्तों की मौत मर गए
बिलख-बिलख नर-नारी
कहाँ गई थी भाग उस समय
मरदानगी तुम्हारी
तब अन्याय का गढ़ तुमने क्यों न चूर कर डाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

पुरखों का अभिमान तुम्हारा
और वीरता देखी
राम-मुहम्मद की संतानो
व्यर्थ न मारो शेखी

सर्वनाश की लपटों में
सुख-शांति झोंकने वालो
भोले बच्चों अबलाओं के
छुरा भोंकने वालो
ऐसी बर्बरता का इतिहासों में नहीं हवाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

घर-घर माँ की कलख
पिता की आह, बहन का क्रंदन,
हाय दुधमुँहे बच्चे भी
हो गए तुम्हारे दुश्मन?
इस दिन की खातिर ही थी
शमशीर तुम्हारी प्यासी?
मुँह दिखलाने योग्य कहीं भी
रहे न भारतवासी!
हँसते हैं सब देख गुलामी का यह ढ़ंग निराला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

जातिधर्म-गृहहीन
युगों का नंगा-भूखा-प्यासा
आज सर्वहारा तू ही है
एक हमारी आशा
ये छल-छंद शोषकों के हैं
कुत्सित, ओछे, गंदे
तेरा खून चूसने को ही
ये दंगों के फंदे
तेरा एका, गुमराहों को राह दिखाने वाला
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

आदमी आदमी से मिलता है
दिल मगर कम किसी से मिलता है।
-जिगर

डॉ. कुंअर बेचैन हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित गीतकार-ग़ज़लकार हैं, जिनका जन्म 1 जुलाई, 1942 को ग्राम उमरी, ज़िला मुरादाबाद (उ.प्र.) में हुआ था। वे गीत-सम्राट नीरज जी के बाद हिंदी काव्य-मंच पर सर्वाधिक प्रशंसा पाने वाले रचनाकार हैं। 21 कविता-संग्रह, एक महाकाव्य तथा एक उपन्यास के लेखक बेचैनजी ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.) के एक महाविद्यालय कें हिन्दी विभागाध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त हैं।

ओ वासंती पवन!

डॉ. कुंअर बेचैन

बहुत दिनों के बाद
खिड़कियाँ खोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!

जड़े हुए थे ताले सारे कमरों में
धूल भरे थे आले सारे कमरों में
उलझन और तनावों के रेशों वाले
पुरे हुए थे जाले सारे कमरों में
बहुत दिनों के बाद
सांकलें डोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!

एक थकन-सी थी नवभाव-तरंगों में
मौन उदासी थी वाचाल उमंगों में
लेकिन आज समर्पण की भाषा वाले
मोहक-मोहक प्यारे-प्यारे रंगों में
बहुत दिनों के बाद
खुशबुएँ घोली हैं
ओ वासंती पवन हमारे घर आना!

पतझर-ही-पतझर था मन के मधुवन में
गहरा सन्नाटा-सा था अंतर्मन में
लेकिन अब गीतों की स्वच्छ मुंडेरी पर
चिंतन की छत पर भावों के आँगन में
बहुत दिनों के बाद
चिरैया बोली है
ओ वासंती पवन, हमारे घर आना!

1 नवम्बर, 1954 को गौरा पाण्डे (उ. प्र.) में जन्में गिरीश पाण्डे प्रयाग विश्वविद्यालय के परास्नातक (भौतिक विज्ञान) हैं। वे 1977 बैच के आई.ए. एस हैं। उनके 'कविता होता है किसान' और 'धरती जानती है' जैसे पाँच कविता-संग्रह तथा दो व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित है। उन्हें उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ के 'विजय देव नारायण साही' और 'श्री नारायण चतुर्वेदी' पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। सम्प्रति आयकर आयुक्त हैं।

गांधारी

गांधारी! तुमने अपनी आँखों पे
स्वयं पट्टियाँ बाँध लीं,
पति-व्रत धर्म निभाने के लिये।
असली पति-व्रत धर्म तो होता
कि तुम अपने पति से कहतीं
अब मेरी आँखें
तुम्हारी भी आँखें बनेगीं
वे अनवरत तुम्हारी
देखभाल में, रक्षा में, सेवा में रहेंगी
दुगुनी शक्ति से।

लेकिन अच्छा धर्म, अच्छा रास्ता
दिखाया/सिखाया/बताया तुमने।
तुम्हारी मानें तो
पितृ-व्रत धर्म निभाने के लिये
अंधे पिता के पुत्रों को भी
आँखों पर पट्टियाँ बाँध लेना चाहिए।
राज्य-धर्म निभाने के लिये
अंधे राजा की प्रजा को भी
अपनी आँखों पर पट्टियाँ बाँध लेनी चाहिए।

अच्छा, चलो मान भी लें
कि अति भावुकता में तुमने
बाँध ही ली आँखों पर पट्टियाँ
कि तुम अपने पति से अधिक कैसे देखतीं
पति के अहं को
ठेस नहीं पहुँचाना चाहती थीं
श्रेष्ठता के अहसास को
लेकिन फिर यह मिथ्या भ्रम और प्रचार
कि पट्टी बांधे-बांधे
तुम्हारी आँखों में इतनी शक्ति आ गई है
कि तुम जिसे भी देखोगी
वह फौलाद का हो जाएगा

इसे क्या कहेंगे?
कोई कुछ भी कहता
जमाना कुछ भी कहता
कृष्ण कुछ भी कहते,
एक माँ होकर भी,
तुम्हें यह विश्वास कैसे हो गया
कि तुम्हारी आँखों में
उस माँ की विह्वल आँखों से
अधिक शक्ति आ गयी
जो निरंतर अपने बच्चे को
स्नेहिल, भोली आँखों से
निरखती रहती है, दुलारती रहती है।
तुम्हारा इस दुष्प्रचार से विश्वास
कि कर्त्तव्यपालन से
कर्त्तव्यहीनता में अधिक शक्ति निहित है
कितना घातक हुआ है
तुम सोच भी नहीं सकतीं।

तुम्हारी देखा-देखी
आज भी अनगिनत लोग
अपनी-अपनी आँखों पर
तरह-तरह की पट्टियाँ बांधे बैठे हैं
अंधविश्वासों की पट्टी
नाम और विशेषणों की पट्टी,
आग्रहों, दुराग्रहों, पूर्वाग्रहों की पट्टी

समूह, भीड़, समुदाय की पट्टी
लोभ, लाभ और विज्ञापनों की पट्टी
इस भ्रम में
कि फर्ज और धर्म भी निभा रहा है
और लगातार शक्ति भी
अर्जित होती जा रही है,

भला ऐसा सम्भव है?
सामान्य प्राकृतिक नियम है
कि जिस भी अंग का प्रयोग नहीं किया जाता
धीरे-धीरे उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है
तुम्हारी आँखों की शक्ति भी तो
क्षीण ही हुई रोज-ब-रोज
वह तो भला हो कृष्ण का
कि उन्होंने तुम्हारे भ्रम की लाज रख ली
अन्यथा यदि वे दुर्योधन को लंगोट न पहनाते
और तुम देखतीं
दुर्योधन का निर्वस्त्र सम्पूर्ण शरीर
और फिर तुम्हारी पट्टी कथा को
कब का विराम लग गया जाता।

रही बात पति-व्रत धर्म की
तो आँखों पर पट्टियाँ बाँध कर
तुमने आजीवन पति-व्रत धर्म निभाया
खूब पुण्य कमाया
लेकिन क्या हासिल हुआ तुम्हें?
इतने पुण्य का क्या प्रताप/प्रभाव रहा?
तुम, तुम्हारा परिवार, पति, पुत्र, परिजन
क्या कोई सुखी हुए?
फिर ऐसे व्रत, ऐसे पुण्यार्जन का लाभ?
आँखों पर पट्टियाँ बाँधने से
पति-व्रत धर्म शायद निभ ही गया हो
लेकिन क्या इससे पुत्रों-प्रपौत्रों के
पालन पोषण में,
पुत्र-धर्म निभाने में बाधा नहीं आयी?
राज-धर्म निभाने में बाधा नहीं आयी?
प्रकृति-धर्म निभाने में बाधा नहीं आयी?
क्या पुत्र-धर्म, राज-धर्म, प्रकृति-धर्म
पति-व्रतधर्म; धर्म का हिस्सा नहीं है?
क्या धर्म को टुकड़ों-टुकड़ों में
बाँटा जा सकता है?
काश! तुम विराट अविभाज्य धर्म का मर्म
समझ पातीं।
वैसे सारे धर्म-निर्वहन का जिम्मा
क्या तुम्हारा ही था?
क्या धृतराष्ट्र का कोई नहीं था?
धृतराष्ट्र को भी तो
पत्नी-व्रत धर्म निभाने के लिये
पुत्र-धर्म, राज-धर्म, प्रकृति-धर्म निभाने के लिये
आदेश देना चाहिए था तुम्हें
कि 'तुम अपनी आँखों की पट्टियाँ खोल दो'।

कोयल बोले या गौरेया अच्छा लगता है
अपने गाँव में सब-कुछ भैया अच्छा लगता है।
-मुनव्वर राणा

12 अक्तूबर, 1938 को दिल्ली में जन्में निदा फाज़ली हिंदुस्तान के अजीम शायर हैं। मुम्बई में रहकर उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवम् टी.वी. और फ़िल्मों के लिए जमकर गीत-ग़ज़ल लिखीं। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित निदा जी 1998 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से अलंकृत हुए। 'लफ्जों का पुल', 'मोरनाच', 'आँख और ख्वाब के दर्मियां' और 'सफ़र में धूप तो होगी' उनके चर्चित कविता-संग्रह हैं।

वालिद की वफात पर

निदा फाज़ली

तुम्हारी कब्र पर
मैं फातिहा पढ़ने नहीं आया
मुझे मालूम था
तुम मर नहीं सकते
तुम्हारी मौत की सच्ची खबर जिसने उड़ाई थी
वो झूठा था
वो तुम कब थे।

कोई सूखा हुआ पत्ता हवा से हिल के टूटा था
मेरी आँखें
तुम्हारे मंजरों में कैद हैं अब तक
मैं जो भी देखता हूँ
सोचता हूँ
वो-वही है

जो तुम्हारी नेकनामी और बदनामों की दुनिया थी
कहीं कुछ भी नहीं बदला
तुम्हारे हाथ
मेरी उँगलियों में साँस लेते हैं

मैं लिखने के लिए
जब भी कलम-कागज़ उठाता हूँ
तुम्हें बैठा हुआ अपनी ही कुर्सी में पाता हूँ

बदन में मेरे जितना भी लहू है
वो तुम्हारी
लग्जिशो नाकामियों के साथ बहता है
मेरी आवाज़ में छुपकर
तुम्हारा ज़हन रहता है

मेरी बीमारियों में तुम
मेरी लाचारियों में तुम
तुम्हारी कब्र पर जिसने तुम्हारा नाम लिक्खा है
वो झूठा है

तुम्हारी कब्र में मैं दफ़्न हूँ
तुम मुझमें जिंदा हो
कभी फुर्सत मिले तो फातिहा पढ़ने चले आना।

दिल ने चाहा बहुत पर मिला नहीं
जिंदगी हसरतों के सिवा कुछ नहीं।
देवमणि पाण्डेय

लक्ष्मीशंकर वाजपेयी का जन्म 10 जनवरी, 1955 को सुजगवां (कानपुर) में हुआ था। वे भौतिक विज्ञान में परास्नातक हैं। उन्होंने ग़ज़ल के साथ हाइकू, व्यंग्य व बालसाहित्य जैसी साहित्यिक विधाओं में सृजन किया है। आप हिंदी काव्य-मंचों पर भी समान रूप से सक्रिय हैं। 'खुश्बू तो बचा ली जाए' और 'बेजुबान दर्द' आपकी चर्चित कृतियां हैं। देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं का प्रकाशन होता रहता है। सम्प्रति, आकाशवाणी दिल्ली के केंद्र निदेशक पद पर कार्यरत हैं।

आदमी के साथ

लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

पहले ही लाख डर है हरेक आदमी के साथ।
उसपे भी मौत जोड़ी गई ज़िंदगी के साथ।
ज्यादा चमक में लोगों ने देखा न हो मगर,
हैं खूब अंधेरे भी नई रोशनी के साथ।
मुमकिन नहीं कि सबको हमेशा खुशी मिले,
होते हैं धूप-छाँव-से ग़म भी खुशी के साथ।
उसकी चिता पे जिस्म ही उसका नहीं जला,
खुशियाँ भी घर की राख हुई थीं उसी के साथ।
सदियों की ले थकन भी निरंतर सफर में ही,
रहने को रहे लाख भँवर भी नदी के साथ।
इक हादसे में कैसे नशेमन उजड़ गए,
देखा था सब शजर ने बड़ी बेबसी के साथ।

घर में मौसम की उम्मीदें लिए हुए बैठे हैं लोग
मौसम आया बंद खिड़कियां किए हुए बैठे हैं लोग।
राम कुमार कृषक

शास्त्री नित्यगोपाल कटारे का जन्म 26 मार्च, 1955 को ग्राम टेकापार, ज़िला नरसिंहपुर (म.प्र.) में हुआ था। आपको वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से 'व्याकरण शास्त्री' उपाधि प्राप्त हुई है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके व्यंग्य, लेख, कविता, नाटक आदि निंरतर प्रकाशित होते रहते हैं।

भारती पुकारती

शास्त्री नित्यगोपाल कटारे

परम पुनीत पुण्यभूमि भारती
उठो युवाओ माँ तुम्हें पुकारती!

सत्य, दान, शीलता की मूर्ति
अभीष्ट सब पदार्थों की पूर्ति
चंद्रमा-सी जिसकी धवल कीर्ति
बनी विपन्नता की प्रतिमूर्ति
वो आस भरी दृष्टि से निहारती
उठो युवाओ माँ तुम्हें पुकारती!

रामकृष्ण की ये पावन धृति
श्लाघनीय संस्कृत सुसंस्कृति
रत्नपूर्ण इस धरा की संतति
क्यों है अशक्त काँच के प्रति
मातृभक्ति पर कभी न हारती
उठो युवाओ माँ तुम्हें पुकारती!

झांक लो ज़रा सुखद अतीत को
शौर्य, वीर्य, धैर्य के प्रतीक को
छोड़ भेदभाव की अनीति को
जगाओ स्वाभिमान की प्रतीति को
जगाओ दिव्य चेतना की आरती
उठो युवाओ माँ तुम्हें पुकारती!

किसी ने देख लिया था बड़ी मुहब्बत से
वो एक लम्हा मेरी जिंदगी है मुद्दत से।
- अंजुम रूमानी

7 अप्रैल, 1945 को म. प्र. के सतना जिले के ग्राम सोनौरा में जन्मे प्रतिष्ठित नवगीतकार अनूप अशेष हिंदी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त हैं। गत चालीस वर्षों से प्रतिष्ठित राष्ट्रीय पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित हो रहे हैं। उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं- 'लौट आएंगे सगुन-पंछी', 'वह मेरे गाँव की हँसी थी', 'हम अपनी खबरों के भीतर' और 'अंधी यात्रा में'। 'मांडवी कथा' उनका नवगीत विधा में प्रथम प्रबंध काव्य है। यहाँ उनके दो नवगीत प्रस्तुत हैं।

दो नवगीत

अनूप अशेष

1

दो कमरे का घर
दस देहों की गंध
और तुम
हर कोने में।

हर बासी सुबहों
बासी खबरों में
लंगडे पाँवों
दौड़े दिन
ज्यों हवा परों में!

उम्र दोपहर
रात उनींदी
तुम होने में
एक हँसी काली आँखों में
दूध-चंद्रमा
बुझी अंगीठी
गर्म सड़क पर
शिवा-उमा!

सागर-मंथन का
अमृत-विष
एक दोने में।

2

कुछ नहीं कहते
न रोते हैं
दुःख
पिता की तरह
होते हैं।
इस भरे तालाब से
बाँधे हुए
मन में
धुंआले से रहे ठहरे
जागते
तन में
लिपटकर हममें
बहुत चुपचाप
सोते हैं।

सगे अपनी बाँह से
टूटे हुए
घर के
चिता तक जाते
उठाकर पाँव
कोहबर के
हम अजाने में जुड़ी
उम्मीद
बोते हैं।

क़दम-क़दम पर है फूलमाला, जगह-जगह है प्रचार पहले
मरेगा फ़ुरसत से मरने वाला, बना दिया है मज़ार पहले।
-नंदलाल पाठक

12 अक्तूबर, 1938 को दिल्ली में जन्में निदा फाज़ली हिंदुस्तान के अजीम शायर हैं। मुम्बई में रहकर उन्होंने अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवम् टी.वी. और फ़िल्मों के लिए जमकर गीत-ग़ज़ल लिखीं। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित निदा जी 1998 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से अलंकृत हुए। 'लफ्जों का पुल', 'मोरनाच', 'आँख और ख्वाब के दर्मियां' और 'सफ़र में धूप तो होगी' उनके चर्चित कविता-संग्रह हैं।

वालिद की वफात पर

निदा फाज़ली

तुम्हारी कब्र पर
मैं फातिहा पढ़ने नहीं आया
मुझे मालूम था
तुम मर नहीं सकते
तुम्हारी मौत की सच्ची खबर जिसने उड़ाई थी
वो झूठा था
वो तुम कब थे।

कोई सूखा हुआ पत्ता हवा से हिल के टूटा था
मेरी आँखें
तुम्हारे मंजरों में कैद हैं अब तक
मैं जो भी देखता हूँ
सोचता हूँ
वो-वही है

जो तुम्हारी नेकनामी और बदनामों की दुनिया थी
कहीं कुछ भी नहीं बदला
तुम्हारे हाथ
मेरी उँगलियों में साँस लेते हैं

मैं लिखने के लिए
जब भी कलम-कागज़ उठाता हूँ
तुम्हें बैठा हुआ अपनी ही कुर्सी में पाता हूँ

बदन में मेरे जितना भी लहू है
वो तुम्हारी
लग्जिशो नाकामियों के साथ बहता है
मेरी आवाज़ में छुपकर
तुम्हारा ज़हन रहता है

मेरी बीमारियों में तुम
मेरी लाचारियों में तुम
तुम्हारी कब्र पर जिसने तुम्हारा नाम लिक्खा है
वो झूठा है

तुम्हारी कब्र में मैं दफ़्न हूँ
तुम मुझमें जिंदा हो
कभी फुर्सत मिले तो फातिहा पढ़ने चले आना।

दिल ने चाहा बहुत पर मिला नहीं
जिंदगी हसरतों के सिवा कुछ नहीं।
देवमणि पाण्डेय

लक्ष्मीशंकर वाजपेयी का जन्म 10 जनवरी, 1955 को सुजगवां (कानपुर) में हुआ था। वे भौतिक विज्ञान में परास्नातक हैं। उन्होंने ग़ज़ल के साथ हाइकू, व्यंग्य व बालसाहित्य जैसी साहित्यिक विधाओं में सृजन किया है। आप हिंदी काव्य-मंचों पर भी समान रूप से सक्रिय हैं। 'खुश्बू तो बचा ली जाए' और 'बेजुबान दर्द' आपकी चर्चित कृतियां हैं। देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं का प्रकाशन होता रहता है। सम्प्रति, आकाशवाणी दिल्ली के केंद्र निदेशक पद पर कार्यरत हैं।

आदमी के साथ

लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

पहले ही लाख डर है हरेक आदमी के साथ।
उसपे भी मौत जोड़ी गई ज़िंदगी के साथ।

ज्यादा चमक में लोगों ने देखा न हो मगर,
हैं खूब अंधेरे भी नई रोशनी के साथ।

मुमकिन नहीं कि सबको हमेशा खुशी मिले,
होते हैं धूप-छाँव-से ग़म भी खुशी के साथ।

उसकी चिता पे जिस्म ही उसका नहीं जला,
खुशियाँ भी घर की राख हुई थीं उसी के साथ।

सदियों की ले थकन भी निरंतर सफर में ही,
रहने को रहे लाख भँवर भी नदी के साथ।

इक हादसे में कैसे नशेमन उजड़ गए,
देखा था सब शजर ने बड़ी बेबसी के साथ।

घर में मौसम की उम्मीदें लिए हुए बैठे हैं लोग
मौसम आया बंद खिड़कियां किए हुए बैठे हैं लोग।
राम कुमार कृषक

शास्त्री नित्यगोपाल कटारे का जन्म 26 मार्च, 1955 को ग्राम टेकापार, ज़िला नरसिंहपुर (म.प्र.) में हुआ था। आपको वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से 'व्याकरण शास्त्री' उपाधि प्राप्त हुई है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके व्यंग्य, लेख, कविता, नाटक आदि निरंतर प्रकाशित होते रहते हैं।

भारती पुकारती

शास्त्री नित्यगोपाल कटारे

परम पुनीत पुण्यभूमि भारती
उठो युवाओ माँ तुम्हें पुकारती!

सत्य, दान, शीलता की मूर्ति
अभीष्ट सब पदार्थों की पूर्ति
चंद्रमा-सी जिसकी धवल कीर्ति
बनी विपन्नता की प्रतिमूर्ति
वो आस भरी दृष्टि से निहारती
उठो युवाओ माँ तुम्हें पुकारती!

रामकृष्ण की ये पावन धृति
श्लाघनीय संस्कृत सुसंस्कृति
रत्नपूर्ण इस धरा की संतति
क्यों है अशक्त काँच के प्रति
मातृभक्ति पर कभी न हारती
उठो युवाओ माँ तुम्हें पुकारती!

झांक लो ज़रा सुखद अतीत को
शौर्य, वीर्य, धैर्य के प्रतीक को
छोड़ भेदभाव की अनीति को
जगाओ स्वाभिमान की प्रतीति को
जगाओ दिव्य चेतना की आरती
उठो युवाओ माँ तुम्हें पुकारती!

किसी ने देख लिया था बड़ी मुहब्बत से
वो एक लम्हा मेरी जिंदगी है मुद्दत से।
- अंजुम रूमानी

7 अप्रैल, 1945 को म. प्र. के सतना जिले के ग्राम सोनौरा में जन्मे प्रतिष्ठित नवगीतकार अनूप अशेष हिंदी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त हैं। गत चालीस वर्षों से प्रतिष्ठित राष्ट्रीय पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित हो रहे हैं। उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं- 'लौट आएंगे सगुन-पंछी', 'वह मेरे गाँव की हँसी थी', 'हम अपनी खबरों के भीतर' और 'अंधी यात्रा में'। 'मांडवी कथा' उनका नवगीत विधा में प्रथम प्रबंध काव्य है। यहाँ उनके दो नवगीत प्रस्तुत हैं।

दो नवगीत

अनूप अशेष

1

दो कमरे का घर
दस देहों की गंध
और तुम
हर कोने में।

हर बासी सुबहों
बासी खबरों में
लंगडे पाँवों
दौड़े दिन
ज्यों हवा परों में!

उम्र दोपहर
रात उनींदी
तुम होने में
एक हँसी काली आँखों में
दूध-चंद्रमा
बुझी अंगीठी
गर्म सड़क पर
शिवा-उमा!

सागर-मंथन का
अमृत-विष
एक दोने में।

2

कुछ नहीं कहते
न रोते हैं
दु:ख
पिता की तरह
होते हैं।
इस भरे तालाब से
बाँधे हुए
मन में
धुंआले से रहे ठहरे
जागते
तन में
लिपटकर हममें
बहुत चुपचाप
सोते हैं।

सगे अपनी बाँह से
टूटे हुए
घर के
चिता तक जाते
उठाकर पाँव
कोहबर के
हम अजाने में जुड़ी
उम्मीद
बोते हैं।

क़दम-क़दम पर है फूलमाला, जगह-जगह है प्रचार पहले
मरेगा फ़ुरसत से मरने वाला, बना दिया है मज़ार पहले।
-नंदलाल पाठक

पवन दीक्षित का जन्म 12 दिसम्बर, 1962 को दनकौर, ज़िला गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.) में हुआ था। वे मंच पर काव्य-पाठ कर श्रोताओं का भरपूर प्यार-दुलार पा रहे हैं।

जिसके भाई सभी पहलवानी करें

पवन दीक्षित

जिसके भाई सभी पहलवानी करें
उससे हम क्यों भला छेड़खानी करें
जिसके भाई सभी पहलवानी करें।

माना उससे कोई ख़ूबसूरत नहीं
है कोई दिल कि जिसमें कोई मूरत नहीं
पसलियाँ एक हो जाएं जिस प्यार में
मुझको उस प्यार की अब ज़रूरत नहीं
उस पे कुर्बान क्यों ये जवानी करें।
जिसके भाई...

हाथ-पैरों से मोहताज़ हो जाऊँ मैं
एक टूटा हुआ साज हो जाऊँ मैं
इश्क़ के इस झमेले में क्यों खामखां
'आई एम' से 'आई वाज' हो जाऊँ मैं
मुफ्त में क्यों फनां ज़िंदगानी करें।
जिसके भाई...

क्यों कहूँ झूठ मैं उन से डरता नहीं
ऐसी हिम्मत का दावा मैं करता नहीं
उसके भाई कहीं ना मुझे देख लें
उस मुहल्ले से भी मैं गुजरता नहीं
उनके जूते मेरी मान-हानी करें।
जिसके भाई...

जिसपे खतरा हो उसपे क्यों 'ट्राई' करें
सबसे पिटते फिरें जगहसाई करें
उसके भाई जो ठोंके सो ठोंके, मगर
राह-चलते भी मेरी ठुकाई करें
अपनी काया से क्यों बेईमानी करें।
जिसके भाई...

बात करने का भी है नहीं हौंसला
बेहतरी है सुरक्षित रखें फ़ासला
भाइयों की पिटाई झिलेगी नहीं
बस यही सोचके कर लिया फैसला
ख़त्म अपनी यहीं पर कहानी करें।
जिसके भाई...

चाँद-सूरज के जो हों मोहताज़, भीख न माँगों उनसे उजालों की
बंद आँखों से ऐसे काम करो, आँख खुल जाए आँख वालों की
-रवींद्र

लोकसभा सचिवालय, संसद भवन में सहायक संपादक के रूप में कार्यरत शिवकुमार 'बिलग्रामी' की कई कविताएं और लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनका कविता-संकलन 'तुम' प्रकाशनाधीन है। यहाँ इनकी दो ग़ज़लें प्रस्तुत हैं।

दो ग़ज़लें

शिवकुमार बिलग्रामी

1

चढ़ते जाओ उनकी निगाह आहिस्ता-आहिस्ता।
बढ़ते जाओ दिल की राह आहिस्ता-आहिस्ता।
कर लो तौबा बाकी गुनाहों से दुनिया में जब,
करते रहो इश्क़-गुनाह आहिस्ता-आहिस्ता।
मिलेगा मुकाम तुझको अपना मगर शर्त ये,
करते रहो हर घड़ी चाह आहिस्ता-आहिस्ता।
न तो शिकवा न शिकायत हो आँसू से बचो तुम,
भरते रहो दिल में आह आहिस्ता-आहिस्ता।

2

पैसा, न ही भगवान चाहिए।
उड़ने को आसमान चाहिए।
परों से कहाँ तक उड़ोगे,
हौसलों की उड़ान चाहिए।
दरिया की गहरायी से क्या-,
कनारों को उफान चाहिए।
आँखों में आंधियां कम हैं,
सीने में तूफान चाहिए।
दलित हो न कोई देवता,
इंसान को इंसान चाहिए।

कभी-कभी की मुलाक़ात भी गनीमत है
नयी सदी के मुताबिक यही मोहब्बत है।
-निदा फाज़ली

उ.प्र. प्रांतीय सेवा के उच्चाधिकारी हेमंत द्विवेदी का जन्म सन् 1961 में इटावा (उ. प्र.) में हुआ था। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम. एस-सी. (गणित) की उपाधि प्राप्तकर्त्ता हैं। उनकी 'आशंका के द्वीप', 'अर्ध-कथानक', 'अंधेरे में औरत' जैसे पाँच काव्य-संग्रह और संस्मरण पुस्तक 'सूटकेस में ज़िंदगी' प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्हें दो बार उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ के प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

सृजनगीत

हेमंत द्विवेदी

यह जीवन का पथ है मित्रो,
जिसके इस पार खड़े हैं हम।
यदि आज चांदनी खिली हुयी,
लेकिन जिस दिन होगी मद्धिम।।
तब मत कहना मदिरालय के,
भीतर आकर के सके न पी।
और सूख गयी जीवन-मदिरा,
तन के प्याले में भरी-भरी।।
सदियों से मैं सुनता आया,
तुम चीख रहे हो गुम्बद से।
अनुभूति बिना गाथा कह दी,
फिर पूछ रहे हो सच हमसे।
ये पूर्ण चांद की रात्रि आज,
प्याले -पर- प्याला ढाल प्रिये।
हो जाये खतम मेरा-तेरा,
हर कोई आता मौत लिए।।
कोई ईश्वर है नहीं वहाँ,
पुष्पांजलि दो कि पढ़ो मंतर।
मानव-पीड़ा को छुए बिना,
पड़ता है नहीं कोई अंतर।।

पैमाने हैं कितने सारे,
पर दिया हलाहल है मुझको।
पीकर छोड़े जबसे शंकर
फिर कोई नहीं पिया इसको।
मेरा क्या होगा, पता नहीं,
मैं बीच समंदर, डूब गया।
मदिरा छलके, गीता बाँचे,
तू चिन्ता कर, मैं मौन हुआ।।
मैं कैसे खुश होकर जी लूँ,
कल्पना, तर्क अभिशप्त जहाँ।
सच्चाई के विपरीत शब्द,
सुविधाओं के पैबस्त जहाँ।।
कपड़े हैं रंगे हुए तेरे,
इच्छाओं के फिर क्या मानी।
शौकीन अगर तू है तो पी,
देता मैं अंगूरी पानी।।
युग बीत गया मदिरा पीते,
मन की मदिरा को सका न पी।
अब तोड़ सभी पैमानों को,
देती मैं शिव का प्याला, पी।।

एक ज़रा-सी दुनिया घर की, लेकिन चीज़ें दुनिया भर की
बाहर धूप खड़ी है कब से, खिड़की खोलो अपने घर की।
-विज्ञान व्रत

दोहे

नरेश शांडिल्य

छोटा हूँ तो क्या हुआ जैसे आँसू एक।
सागर जैसा स्वाद है तू चखकर तो देख।।

देखा तेरे शहर को, भीड़, भीड़-ही-भीड़।
तिनके ही तिनके मिले, मिला न कोई नीड़।।

कतरा-कतरा घुल रही, घर-घर बूढ़ी आँख।
बेटे बहुओं को लगे, सुरखाबों के पाँख।।

सब कुछ पलड़े पर चढ़ा, क्या नाता क्या प्यार।
घर का आँगन भी लगे, अब तो इक बाज़ार।।

मैंने देखा देश का बड़ा सिया सतदान।
न चेहरे पर आँख थी, न चेहरे पर कान।।

जागा लाखों करवटें, भीगा अश्क हज़ार।
तब जाकर मैंने किए, कागज़ काले चार।।

मैं खुश हूँ औज़ार बन, तू ही बन हथियार।
वक्त करेगा फैसला, कौन हुआ बेकार।।

सब-सा दिखना छोड़कर, खुद-सा दिखना सीख।
संम्भव है सब हों गलत, बस तू ही हो ठीक।।

तू पत्थर की ऐंठ है, मैं पानी की लोच।
तेरी अपनी सोच है, मेरी अपनी सोच।।

लौ से लौ को जोड़कर, लौ को बना मशाल।
क्या होता है देख फिर, अंधियारों का हाल।।

– o)-(o –

पवन दीक्षित का जन्म 12 दिसम्बर, 1962 को दनकौर, ज़िला गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.) में हुआ था। वे मंच पर काव्य-पाठ कर श्रोताओं का भरपूर प्यार-दुलार पा रहे हैं।

जिसके भाई सभी पहलवानी करें

पवन दीक्षित

जिसके भाई सभी पहलवानी करें
उससे हम क्यों भला छेड़खानी करें
जिसके भाई सभी पहलवानी करें।

माना उससे कोई ख़ूबसूरत नहीं
है कोई दिल कि जिसमें कोई मूरत नहीं
पसलियाँ एक हो जाएं जिस प्यार में
मुझको उस प्यार की अब ज़रूरत नहीं
उस पे कुर्बान क्यों ये जवानी करें।
जिसके भाई...

हाथ-पैरों से मोहताज़ हो जाऊँ मैं
एक टूटा हुआ साज हो जाऊँ मैं
इश्क़ के इस झमेले में क्यों खामखां
'आई एम' से 'आई वाज' हो जाऊँ मैं
मुफ्त में क्यों फनां ज़िंदगानी करें।
जिसके भाई...

क्यों कहूँ झूठ मैं उन से डरता नहीं
ऐसी हिम्मत का दावा मैं करता नहीं
उसके भाई कहीं ना मुझे देख लें
उस मुहल्ले से भी मैं गुजरता नहीं
उनके जूते मेरी मान-हानी करें।
जिसके भाई...

जिसपे खतरा हो उसपे क्यों 'ट्राई' करें
सबसे पिटते फिरें जगहसाई करें
उसके भाई जो ठोंके सो ठोंके, मगर
राह-चलते भी मेरी ठुकाई करें
अपनी काया से क्यों बेईमानी करें।
जिसके भाई...

बात करने का भी है नहीं हौंसला
बेहतरी है सुरक्षित रखें फ़ासला
भाइयों की पिटाई झिलेगी नहीं
बस यही सोचके कर लिया फैसला
ख़त्म अपनी यहीं पर कहानी करें।
जिसके भाई...

चाँद-सूरज के जो हों मोहताज़, भीख न माँगों उनसे उजालों की
बंद आँखों से ऐसे काम करो, आँख खुल जाए आँख वालों की।
-रवींद्र जैन

लोकसभा सचिवालय, संसद भवन में सहायक संपादक के रूप में कार्यरत शिवकुमार 'बिलग्रामी' की कई कविताएं और लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनका कविता-संकलन 'तुम' प्रकाशनाधीन है। यहाँ इनकी दो ग़ज़लें प्रस्तुत हैं।

दो ग़ज़लें

शिवकुमार बिलग्रामी

1

चढ़ते जाओ उनकी निगाह आहिस्ता-आहिस्ता।
बढ़ते जाओ दिल की राह आहिस्ता-आहिस्ता।
कर लो तौबा बाकी गुनाहों से दुनिया में जब,
करते रहो इश्क़े-गुनाह आहिस्ता-आहिस्ता।
मिलेगा मुकाम तुझको अपना मगर शर्त ये,
करते रहो हर घड़ी चाह आहिस्ता-आहिस्ता।
न तो शिकवा न शिकायत हो आँसू से बचो तुम,
भरते रहो दिल में आह आहिस्ता-आहिस्ता।

2

पैसा, न ही भगवान चाहिए।
उड़ने को आसमान चाहिए।
परों से कहाँ तक उड़ोगे,
हौसलों की उड़ान चाहिए।
दरिया की गहरायी से क्या-,
कनारों को उफान चाहिए।
आँखों में आंधियां कम हैं,
सीने में तूफान चाहिए।
दलित हो न कोई देवता,
इंसान को इंसान चाहिए।

कभी-कभी की मुलाक़ात भी गनीमत है
नयी सदी के मुताबिक यही मोहब्बत है।
-निदा फाज़ली

उ.प्र. प्रांतीय सेवा के उच्चाधिकारी हेमंत द्विवेदी का जन्म सन् 1961 में इटावा (उ. प्र.) में हुआ था। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम. एस-सी. (गणित) की उपाधि प्राप्तकर्त्ता हैं। उनकी 'आशंका के द्वीप', 'अर्ध-कथानक', 'अंधेरे में औरत' जैसे पाँच काव्य-संग्रह और संस्मरण पुस्तक 'सूटकेस में ज़िंदगी' प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्हें दो बार उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ के प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

सृजनगीत

हेमंत द्विवेदी

यह जीवन का पथ है मित्रो,
जिसके इस पार खड़े हैं हम।
यदि आज चांदनी खिली हुयी,
लेकिन जिस दिन होगी मद्धिम।।
तब मत कहना मदिरालय के,
भीतर आकर के सके न पी।
और सूख गयी जीवन-मदिरा,
तन के प्याले में भरी-भरी।।
सदियों से मैं सुनता आया,
तुम चीख रहे हो गुम्बद से।
अनुभूति बिना गाथा कह दी,
फिर पूछ रहे हो सच हमसे।
ये पूर्ण चांद की रात्रि आज,
प्याले -पर- प्याला ढाल प्रिये।
हो जाये खतम मेरा-तेरा,
हर कोई आता मौत लिए।।
कोई ईश्वर है नहीं वहाँ,
पुष्पांजलि दो कि पढ़ो मंतर।
मानव-पीड़ा को छुए बिना,
पड़ता है नहीं कोई अंतर।।
पैमाने हैं कितने सारे,
पर दिया हलाहल है मुझको।
पीकर छोड़े जबसे शंकर
फिर कोई नहीं पिया इसको।
मेरा क्या होगा, पता नहीं,
मैं बीच समंदर, डूब गया।
मदिरा छलके, गीता बाँचे,
तू चिन्ता कर, मैं मौन हुआ।।
मैं कैसे खुश होकर जी लूँ,
कल्पना, तर्क अभिशप्त जहाँ।
सच्चाई के विपरीत शब्द,
सुविधाओं के पैबस्त जहाँ।।
कपड़े हैं रंगे हुए तेरे,
इच्छाओं के फिर क्या मानी।
शौकीन अगर तू है तो पी,
देता मैं अंगूरी पानी।।
युग बीत गया मदिरा पीते,
मन की मदिरा को सका न पी।
अब तोड़ सभी पैमानों को,
देती मैं शिव का प्याला, पी।।

एक ज़रा-सी दुनिया घर की, लेकिन चीज़ें दुनिया भर की
बाहर धूप खड़ी है कब से, खिड़की खोलो अपने घर की।
-विज्ञान व्रत

दोहे

नरेश शांडिल्य

छोटा हूँ तो क्या हुआ जैसे आँसू एक।
सागर जैसा स्वाद है तू चखकर तो देख।।

देखा तेरे शहर को, भीड़, भीड़-ही-भीड़।
तिनके ही तिनके मिले, मिला न कोई नीड़।।

कतरा-कतरा घुल रही, घर-घर बूढ़ी आँख।
बेटे बहुओं को लगे, सुरखाबों के पाँख।।

सब कुछ पलड़े पर चढ़ा, क्या नाता क्या प्यार।
घर का आँगन भी लगे, अब तो इक बाज़ार।।

मैंने देखा देश का बड़ा सिया सतदान।
न चेहरे पर आँख थी, न चेहरे पर कान।।

जागा लाखों करवटें, भीगा अश्क हज़ार।
तब जाकर मैंने किए, कागज़ काले चार।।

मैं खुश हूँ औज़ार बन, तू ही बन हथियार।
वक्त करेगा फैसला, कौन हुआ बेकार।।

सब-सा दिखना छोड़कर, खुद-सा दिखना सीख।
संम्भव है सब हों गलत, बस तू ही हो ठीक।।

तू पत्थर की ऐंठ है, मैं पानी की लोच।
तेरी अपनी सोच है, मेरी अपनी सोच।।

लौ से लौ को जोड़कर, लौ को बना मशाल।
क्या होता है देख फिर, अंधियारों का हाल।।

-o)-(o-

सुरेश शुक्ल 'शरद आलोक' से डॉ. सुधाओम ढींगरा की बातचीत

प्रवासी साहित्य अब एकाकी नहीं है

विदेश की धरती ने बहुत से हिन्दी साहित्यकार बनाये हैं, जो बीज तो भारत से लाये थे, पर फले-फूले परदेस में। कई तो देश की माटी से सम्मानित हुए और कई प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी अपने देश और अपनी माटी से पहचान की तलाश करते हुए संघर्षरत हैं। इसका कारण ढूँढने की कोशिश की और बहुत शोध करने पर पाया कि आधुनिक युग की देन नेट वर्किंग (Net Working) का गुण जिन महानुभावों ने अपनाया, वे सफलता की सीढियाँ चढ़ गए और बाकी उच्च स्तरीय लेखक होने के बावजूद भी रास्ते ही तलाश रहे हैं। नार्वे के सुरेश शुक्ल 'शरद आलोक' इस मामले में अन्यों से धनी हैं। आलोचकों ने उन्हें मुख्यधारा का नहीं माना पर उन्होंने अपनी धारा स्वयं बनाई। वेदना, रजनी, नंगे पाँव का सुख, दीप जो बुझते नहीं, संभावनाओं की तलाश, नीड़ में फंसे पँख, अनजान पंछी (फ्रम्मेदे फ्युगलेयर-नार्वेजीय) आपके कविता संग्रह हैं। अर्द्धरात्रि का सूरज, तरुफी ख़त (उर्दू) कहानी संग्रह हैं। आपने नार्वे की लोक कथाएँ, हान्स क्रिस्तियान अन्दर्सन (डेनमार्क) की कथाएँ, नार्वे की उर्दू कहानियाँ, प्रतिनिधि प्रवासी कहानियाँ, का अनुवाद और सम्पादन एवं नार्वे के हेनरिक इवसेन की कृतियों का अनुवाद 'गुड़िया का घर', मुर्गाबी' किया। आपकी कहानियों और कविताओं का अनुवाद बंगला, उर्दू, पंजाबी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी, नार्वेजीय, स्वीडिय, स्पेनिश, वियतनामी और नेपाली भाषाओं में हुआ है। 18 संकलनों में आपकी रचनाएँ सम्मिलित हैं। आपकी दो कथाओं पर टेली फिल्में बनीं और कुछ टेली फिल्मों में आपने गीत भी लिखे। 'तलाश' नार्वे और डेनमार्क टीवी पर प्रसारित हुई। भारत में आप 36 बार और विदेशों (डेनमार्क, नार्वे, यू.के, यू.एस.ए.,मारीशस) में 24 बार पुरस्कृत और सम्मानित हुए।

मानवाधिकार पर हिन्दी में बहुत कम लिखा गया है। जो लिखा भी गया है वह गुस्से में और उन रचनाओं में केवल आक्रोश झलकता है। आपकी रचनाओं में जो मानववादी दृष्टिकोण मिलता है, वह अन्य जगह दुर्लभ है। आपकी कहानियों में अंतर्राष्ट्रीय समस्याएँ प्रमुख हैं। अनेक आलोचकों ने आपको मानवतावादी लेखक कहा है। प्रस्तुत है पत्रकार, कवि, कहानीकार, नाटककार और अनुवादक सुरेश शुक्ल 'शरद आलोक' जी के साथ हुई अनौपचारिक बातचीत:

नार्वे आप कब और कैसे आए?

मैं नार्वे भारतीय गणतंत्र दिवस 26 जनवरी, 1980 को रूसी हवाई जहाज़ एयरोफ्लाट से आया था। ओस्लो के फोरनेवू हवाई अड्डे पर तापमान- 22 था। गज़ब की सर्दी थी। सन् 1975 में प्रकाशित हो गया था। मारीशस में होन वाले एक सम्मेलन में जाने की तैयारी कर रहा था। नार्वे में सन 1978 में एक पत्रिका 'परिचय' के प्रकाशन का शुभारम्भ इंडियन वेलफेयर सोसाइटी ने किया था। 'परिचय' पत्रिका के लिए एक व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो नि:स्वार्थ भाव से कार्य कर सके। मेरे पास आमंत्रण आया कि 'परिचय' में सहयोग करना चाहो तो मैं नार्वे अध्ययन के बहाने आ सकता हूँ। मैंने हाँ कर दी और इसी सिलसिले में मेरे बड़े भाई ने नार्वे बुलाया। ओस्लो एयरपोर्ट पर मुझे लेने मेरे बड़े भाई राजेंद्र प्रसाद शुक्ल और देवव्रत घोष आये थे। देवव्रत घोष अब इस दुनिया में नहीं हैं। उसी दिन भारतीय दूतावास में आयोजित गणतंत्र दिवस कार्यक्रम में गया था। वहाँ मेरी मुलाकाल त्रिलोचन सिंह, साहेब सिंह देवगन, शम्भूनाथ चतुर्वेदी और दूतावास में कार्यरत लोगों से हुई।

नार्वे में हिन्दी की स्थिति तब क्या थी और अब कैसी है?

जब मैं नार्वे आया था तब हिंदी का आरंभिक दौर था। भारतीय मूल के प्रवासियों की संख्या लगभग दो हज़ार थी। आज प्रवासी भारतीयों की संख्या सवा सात हज़ार है। जैसा कि मैं बता चुका हूँ कि नार्वे में हिन्दी की पत्रिका

'परिचय' का शुभारम्भ हो चुका था, जो हस्तलिखित होती थी पर ऑफसेट पर छपती थी। अब पत्रिका कैसे निकले? और कौन इसके लिए काम करे? हिन्दी पत्रिका में कार्य के लिए पैसे तो मिलने नहीं थे? यह कार्य मिशन भाव से करने के लिए मैं तैयार हो गया था।

पर आप तो अध्ययन के साथ आए ही इस काम के लिए थे?

जी...जी और 1980 से 1985 तक 'परिचय' का संपादक करता रहा। पत्रिका हिन्दी के अलावा पंजाबी में भी छपती थी अत: मैंने पंजाबी स्क्रिप्ट को पढ़ना सीखा। बहुत आनन्द आया। सन 1984 में भारतीय दूतावास से एक टाईपराइटर प्राप्त हुआ और 1985 में छपाई के लिए सरकारी आर्थिक सहायता भी प्राप्त हुई। 1984 में जब मेरा दाखिला पत्रकारिता में हुआ तब 'परिचय' पत्रिका में कार्य करने में परेशानी आने लगी। पर 1985 तक संपादन और प्रकाशन करता रहा। 'परिचय' हिन्दी में निकलने वाली स्कैंडिनेविया (नार्वे, स्वीडेन, डेनमार्क और फिनलैंड) की पहली हिन्दी पत्रिका थी। बाद में 'पहचान', 'त्रिवेणी', 'सनातनमंच', 'शांतिदूत', 'प्रवासी टाइम्स', 'भारत समाचार' और 'वैश्विका' निकली और सभी बंद हो गयीं। वैश्विका यदा-कथा दिखाई पड़ जाती है। सन्1988 में जब मैंने देखा कि हिन्दी पत्रिका की जरूरत है, तब मैंने एक नयी पत्रिका 'स्पाइल Speil दर्पण' का प्रकाशन और संपादन शुरू किया और यह एक मात्र पत्रिका है जो नार्वे में नियमित छप रही है। सभी भारतीय दूतावास में, किसी उत्सव अथवा त्यौहार पर जब मिलते हैं तो हिंन्दी में ही बातचीत करना पसंद करते हैं। ये भारतीय अनेक प्रान्तों से हैं। मसलन पंजाब, बंगाल, गुजरात, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु आदि से।

कानून के मार्फत मातृभाषा की शिक्षा का प्रावधान किया गया था। जिन भारतीय मूल के बच्चों की मातृभाषा हिंदी थी, उन्हें हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था किंडरगार्डेन और बेसिक स्कूलों में की गयी थी। मैंने भी दूतावास में कार्य करने वाले लोगों के बच्चों को हिन्दी निशुल्क पढ़ाई। बजट की कटौती के कारण 1993 में ओस्लो में हिंदी और अन्य भाषाओं को मातृभाषा के रूप में पढ़ाया जाना बंद हो गया था। कक्षा दस के छात्र एक अतिरिक्त भाषा के तौर पर इसकी परीक्षा दे सकते हैं पर उन्हें अध्ययन स्वयं करना होता है। अभी हिंदी का शिक्षण निजी तौर पर माता-पिता और स्वयंसेवी कर रहे हैं। हाल ही में 21 अगस्त, 2009 को संगीता सीमोनसेन के नेतृत्व में प्रो. निर्मला एस. मोर्य ने हिन्दी स्कूल का उदघाटन किया था। मीना ग्रोवर भी अपने घर पर बच्चों को हिंदी पढ़ाती हैं। विश्वविद्यालय में आजकल छात्र नहीं हैं, इस वर्तमान सत्र में हिंदी नहीं पढ़ाई जा रही है। हिन्दी पढ़ाने के लिए प्रो. क्लाउस पेतेर जोलर हैं, जो एक विद्वान हैं।

लेखन की लगन कब लगी?

जब कक्षा पाँच में नगरपालिका की पाठशाला में पढ़ता था, तब अक्सर हमारे अध्यापक हम सभी को अन्ताक्षरी करवाते थे। जिससे अनेक कविताएँ कंठस्थ हो गयी थी। बड़ा आनन्द आता था। कक्षा आठ में कविता लिखना आरम्भ किया। वर्षा पर पहली कविता लिखी। कक्षा 9 में मेरी पहली कविता अखबार में छपी थी।

इंटरमीडिएट उत्तीर्ण किया ही था कि मेरा पहला कविता संग्रह 'वेदना' प्रकाशित हो गया था। हाई स्कूल में ही मैंने भारतीय रेल की सवारी और माल डिब्बा कारखाना में कार्य करना शुरू कर दिया था। जो सिलसिला 7 वर्षों तक चलता रहा। इसी दौरान मैंने बी.ए. पास किया और टीचर ट्रेनिंग भी प्राप्त की। अक्सर मैं स्थानीय पत्र पत्रिकाओं में कविताएँ लिखा करता था।

प्रवासी साहित्यकार कहलवाना कैसा लगता है?

यदि मुझे कोई नार्वे मूल का न होने के कारण प्रवासी कहता तो मुझे बुरा नहीं लगता। क्योंकि नार्वे में राजा भी प्रवासी था, वह डेनमार्क से आया था। आजकल जो लोकप्रिय प्रधानमंत्री येन्सस्तूल्तेंबर्ग हैं, उनके पूर्वज जर्मनी से हैं। और जहाँ तक प्रवासी लेखक कहलाने की बात है, वह मेरे अपने ऊपर निर्भर नहीं करता, किस सन्दर्भ में कहा जा रहा है वह भी मायने रखता है। यहाँ की भाषा

हमारी मातृभाषा नहीं है अत: स्वाभाविक है कि हम अपनी मातृभाषा में लिखते हैं। यहाँ नार्वे आकर नार्वेतीय भाषा, नार्वेजीय साहित्य, पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त की और यहाँ की भाषा में भी दो काव्य संग्रह यानि की नार्वेजीय भाषा में लिखे, जिसके लिए मुझे यहाँ के लेखक के रूप में स्वीकृति मिली और पुरस्कार भी मिला। लोग मुझे जानने-पहचानने लगे। यहाँ प्रवासी होने से कुद्द लोग अपरिपक्वता की दृष्टि से देखते तो कुछ विशेष समझते हैं। मैं आलोचक नामवर सिंह से सहमत हूँ, उन्होंने कहा है कि लेखक बस लेखक होता है वह देश में रहकर लिखे या विदेश में रहकर और साहित्य भी प्रवासी नहीं होता। मुझे अनेक भाषाओं की जानकारी होने का लाभ मिलता है। पश्चिम और पूर्व का मिश्रण मेरी रचनाओं में आसानी से देखने को मिल जाता है। विविधता को पास से देखने और सांमजस्य रखने का गुण मुझे मेरी संस्कृति ने सिखाया है।

प्रवास वास ने आपके साहित्यिक मूल्यांकन को कितनी ठेस पहुँचाई?

मुझे प्रवास ने कोई ठेस नहीं पहुँचाई। मुझे नार्वे में भारतीय लेखक होने का मान है। मेरा मानना है कि चाहे मैं आजीवन यहाँ रह भी जाऊँ, अपने आपको नार्वेजीय नहीं समझ पाऊँगा और भारतीय होने में मुझे गर्व और संतोष दोनों हैं।

देश-विदेश के समकालीन किन हिन्दी लेखकों और कवियों को आपने पढ़ा है? कौन बहुत अच्छा लिख रहे हैं?

अपने 30 वर्ष के प्रवास में 27 वर्षों तक प्रवासी पत्रिकाओं 'परिचय' (1980 से 1985), 'स्पाइल-दर्पण' (1988 से) औरवैश्विका (2007 से अनियमित) का संपादन करते हुए बहुत से प्रवासी लेखकों की प्रकाशन के लिए स्वीकृत रचनाओं को ध्यान से पढ़ा है। प्रवासी लेखकों की रचनाएं अनेक रंगों से भरी हुई हैं। रचनाओं में जहाँ अपने वतन से प्रेम, वियोग और भावनात्मक संबंधों की भरमार है, वहीं अतीत और वर्तमान से तुलना, कभी किसी को बेहतर बताना तो कभी नकारना अनेक रचनाओं में उद्धृत हुआ है। और निजी अनुभवों के साथ भावुकता से भरी रचनाओं को, विशेषकर यूरोप में बसे अधिकांश रचनाकारों के अलावा, बहुत से अमेरिका में बसे लेखकों की रचनाएँ भी प्रकाशित की हैं।

अनेक रचनाओं की रचनाएँ पढ़ी हैं और उनका आनन्द भी लिया है। प्रवासी लेखकों में अमेरिका से जिनको अक्सर पढ़ता हूँ वे हैं: वेदप्रकाश बटुक, उषादेवी विजय कोल्हटकर, सुषम बेदी, स्व. ओमप्रकाश प्रवासी, अफ़रोज़ ताज, डॉ सुधाओम ढींगरा, अंजना संधीर, अमरेन्द्र कुमार, अनिल प्रभाकुमार, इला प्रसाद, अनुभव शुक्ल आदि अच्छा लिख रहे हैं। यू.के. से तेजेन्द्र शर्मा, गौतम सचदेव, डॉ. कृष्ण कुमार, उषा वर्मा, दिव्या माथुर, उषा राजे सक्सेना आदि। अन्य स्थानों से कृष्णबिहारी, अनिल जनविजय, पूर्णिमा वर्मन, शरद आलोक, हरचरण चावला आदि। निर्मल वर्मा और उषा प्रियम्वदा की प्रवास पर लिखी रचनाएँ बहुत प्रभाव डालती हैं। मारीशस एक बहुत छोटा देश है। हिन्दी मारीशस की भी भाषा है, क्रियोल, फ्रेंच और अंग्रेजी के बाद हिन्दी स्वीकृत भाषा है, जो बोलचाल और आचार-विचार में प्रयुक्त होती है। प्रहलाद रामशरण और अभिमन्यु अनत मारीशस के दो बड़े रचनाकार हैं। भारत की सूची बहुत लम्बी है जो यहाँ देनी संभव नहीं। दिल्ली के कुछ लेखक बहुत अच्छा लिख रहे हैं, पर उनके व्यक्तित्व से मैं प्रभावित नहीं। दिल्ली वालों का क्या कहना। जैनेन्द्र कुमार जी ने बताया था कि एक कार्यक्रम में (मेरे आदर्श) मुंशी प्रेमचन्द मुख्यवक्ता थे पर दिल्ली वालों ने उन्हें मामूली समझकर टिकट की खिड़की दिखा दी और प्रेमचन्द जी ने टिकट खरीद लिया। महात्मा गाँधी जी ने कहा था कि मेरे घर की सारी खिड़कियाँ खुली हुई हैं, परन्तु नींव पक्की है अत: प्रवासी साहित्य ने हर ओर से हर विचारधारा से कुछ लिया है और उसकी नींव बहुत मजबूत है।

साहित्यिक गुटबंदियों से आप कहाँ तक प्रभावित हुए हैं?

जिसका नहीं है दल/ उसका नहीं है कल?/ आओ मिल मजबूत करें / अपनी इन्द्रियों का बल... ये मेरी पंक्तियाँ कुछ हद तक जवाब दे रही हैं। अब सहकारिता और

एकता के साथ प्रवासी लेखक अपने कदम वैश्विक साहित्य के धरातल पर तो बढ़ा ही रहा है, बल्कि वैश्विक साहित्य को अनुवाद के जरिये अपनी मातृभाषा हिन्दी में भी प्रसारित कर रहा है। हैं न कमाल की बात। आने वाले समय में हिन्दी में विश्व का बहुत सा साहित्य पढ़ा जा सकेगा। अब पहले मैं अपना विचार बता दूँ तो मेरे विचार समझने में आसानी होगी। मैं राजनीति और साहित्य को एक दूसरे का पूरक मानता हूँ। जो लोग विदेशों में रह रहे हैं उन्हें चाहिए कि वे वहाँ की राजनीति में सक्रिय हिस्सा लें और सभी निर्णयों में स्वयं भी साथ रहें ताकि वे अपनी भाषा हिन्दी, अपनी संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठा सकें। वहाँ के जलसों, आन्दोलनों में और सभाओं में अपनी कविताओं, विचारों से लाभान्वित करें, अपना पक्ष तर्कपूर्वक रखें और प्रभावित भी करें। **यदि ऐसा किया गया तब आस्ट्रेलिया से यह आवाज़ आनी बंद हो जाएगी कि प्रवासियों के साथ ज़्यादती होती है।** आवश्यकता है कि हम जहाँ रहते हैं, अपनी भागीदारी वहाँ के मूलवासियों की तरह कदम से कदम मिला कर चलते हुए बढ़ाएं। भेदभाव और अन्याय के खिलाफ मुहिम में मूल लोगों को शामिल करना पड़ेगा। पश्चिमी देशों में श्रमदान, अधिक से अधिक सामूहिक कार्यों में भागीदार विशेषकर आस्ट्रेलिया में रह रहे प्रवासियों में बहुत कम है, जिसे बढ़ाने की जरूरत है। गुटबंदी यदि किसी सार्थक उद्देश्य से हो तो ठीक है जैसे अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए राजनैतिक प्रदर्शन, विरोध आदि। राजनैतिक गुटबंदी के तहत राजनैतिक पार्टियों को ले सकते हैं। ब्रिटेन की तरह हम भारतीयों को आस्ट्रेलिया, अमेरिका और अन्य देशों में राजनीति और व्यवसाय में अपने कदम बढ़ाने चाहिए, यहाँ प्रवासी साहित्यकारों की भी जरूरत है जो प्रोत्साहित करने के लिए और वहाँ के साहित्य में भी जगह बनाने के लिए अपने लोगों की मदद करें। अन्य देशों में यदि प्रगतिशील, दलित विमर्श या नारी विमर्श की बात हो तो ये साहित्य में एक आन्दोलन और वाद के रूप में देखे जा सकते हैं। कोई यदि केवल सम्बंधी रचनाएँ लिखता है तो उसकी रचनाएँ लिखता है तो उसकी रचनाएँ इसके अनुरूप हो सकती हैं पर जरूरी नहीं कि ये लेखक खेमे में बँटकर दूसरों का इसलिए विरोध करें क्योंकि वे ज़्यादा है, या उनकी विचारधारा दूसरों से बेहतर है।

साहित्यिक आलाचकों ने आपको अभी तक मुख्यधारा में नहीं माना। कारण क्या है?

सुधा जी, बहुत से आलोचकों ने प्रवासी साहित्य को मुख्यधारा से अलग कर रखा है यह सही है। पर एक खुशखबरी है कि नामवर सिंह जी ने प्रवासी साहित्य को केवल हिंदी साहित्य कहा है वह भारत में लिखे जा रहे साहित्य की तरह है। मुझे विश्व हिंदी सम्मेलन में दलित साहित्य पर आयोजित सत्र का संचालन करने का अवसर मिला था। मेरा मानना था कि सत्र में 50 प्रतिशत महिला रचनाकार होनी चाहिए, पर दलित साहित्य पर लेख पढ़ने वाले अधिकांश पुरुष दलित साहित्यकारों ने विरोध किया था। महिला रचनाओं की उचित भागीदारी के बिना सत्र अधूरा रह जाता अत: प्रजातंत्र का हवाला देते हुए वहाँ उस सत्र को बराबर की भागीदारी से सफल बनाया गया था। प्रायोगिक रूप से राजनीति न्याय दिलाती है और अपने विचार थोपने के लिए चलायी जा रही मुहिम न कोई आन्दोलन कहलाता है न ही कोई विधा। समय बदल रहा है। प्रवासी साहित्य अब एकाकी नहीं है। वैश्विक धरातल पर चाहे वह इन्टरनेट हो, वेब-पत्रिका हो, फेसबुक हो, टवीटर हो, ऑरकुट हो या ब्लॉग सभी जगह हिन्दी का और प्रवासी साहित्य का बोलबाला है।

जितने खुश दिखते हैं उतने रोते हैं बेचारे लोग,
मुस्कानों के पहन मुखौटे जीते हैं बेचारे लोग

-लक्ष्मण दुबे

डॉ. सरिता शर्मा हिंदी काव्य-मंच की प्रतिष्ठित कवयित्री हैं। उनके कई चर्चित कविता-संग्रह और सी.डी. प्रकाशित-प्रसारित हैं।

प्यार बही खातों में

डॉ. सरिता शर्मा

हाथ लिए हाथों में डूब गये बातों में
शाम ने लिखा आकर प्यार बही खातों में।

पथरीली धरती में बीज कहीं सोए थे
आवारा बादल के नैन कभी रोए थे
कितने पौधे उग आए अल्हड़ बरसातों में
शाम ने लिखा आकर प्यार बही खातों में।

आईने की आँखों में राज़ नये बसते हैं
मौसम के गालों पर शोख रंग हँसते हैं
चितवनें हुई चंचल चार मुलाक़ातों में
शाम ने लिखा आकर प्यार बही खातों में।

दूर-दूर रहकर भी दूर है कोई
बोलती रही पायल रातभर नहीं सोई
चाँद से हुई अनबन चाँद वाली रातों में
शाम ने लिखा आकर प्यार बही खातों में।

ज़िंदगी का ज़िंदगी से वास्ता ज़िंदा रहे
हम रहें जब तक हमारा हौंसला ज़िंदा रहे।
-अशोक अंजुम

1 सितंबर, 1960 को रुड़की उत्तरांचल में जन्मी और वर्तमान में अमेरिका में रह रहीं अंजना संधीर ने गुजरात विश्वविद्यालय से एम.ए., पी-एच.डी तक शिक्षा प्राप्त की है। उनकी ख्याति कवयित्री, सम्पादक व अनुवादक के रूप में है। तुम मेरे पापा जैसे नहीं, 'वारिशों का मौसम' और 'धूप, छाँव और आँगन' उनके कविता-ग़ज़ल-संग्रह है।

कभी रुककर ज़रूर देखना

अंजना संधीर

पतझड़ के सूखे पत्तों पर
चलते हुए जो संगीत सुनाई पड़ता है
पत्तों की चरमराहट का
ठीक वैसे ही धुनें सुनाई पड़ती हैं।
भारी-भरकम कपड़ों से लदे शरीर
जब चलते हैं ध्यान से
बिखरी हुई 'स्नो' पर, जो बन जाती है।
बर्फ़
कहीं ढीली होती है ये बर्फ
तो छपाक-छपाक की ध्वनि उपजती है।
मानो वारिश के पानी में
नहाता हुआ कोई बच्चा
लगाता है छलांगें जमा हुए पानी में।
'साइडवाक' पर एक-के-बाद-एक
पड़ते क़दमों से
बर्फ़ के बीचों-बीच बन जाती है पगडंडी
सर से पाँव तक ढके, बस्ते लटकाए
छोटे-छोटे बच्चे
पगडंडी पर चलते-चलते कूद पड़ते है।
पास पड़े बर्फ़ के ढेर पर
तो चरवाहे की तरह ज़ोर से
हाँक लगाते हैं अभिभावक-
''सीधे चलो, पगडंडी पर
वरना फिसल जाओगे''
'स्नो' तो नटखट बना देती है
फिर ये बच्चे तो खुद नटखट होते हैं
फिर ज़ोर-ज़ोर से
बर्फ़ को चरमराते हुए चलते है।
कभी गोले उठाते हैं, फेंकते हैं,
फिसलते हैं, लेटते हैं और कभी कूदते है
लाख हिदायतों के बावजूद
चरमराहट, छपाक... श... श
की मधुर लहरों के साथ-साथ दृश्य भी
चलते हैं...
संगीत और चित्रण का कैसा
संगम है ये स्नो।
कभी रुककर ज़रूर देखना।

हमने क्या पा लिया हिंदू या मुसलमां होकर
क्यों न इंसा से मुहब्बत करें इंसा होकर।
-नख़्श लायकपुरी

शैलाभ शुभिशाम का जन्म 4 अगस्त, 1979 को भागलपुर (बिहार) में हुआ था। वे आई. आई. टी, नयी दिल्ली से गणित और कम्प्यूटर्स में इंटिग्रेटेड मास्टर्स हैं। सम्प्रति जापान में साफ्टवेयर इंजीनियर हैं।

मैं स्वप्न नहीं तेरा

शैलाभ शुभिशाम

मैं स्वप्न नहीं तेरा कांची मुझको इसका शोक नहीं ।
मैं अश्रु बनाना किसी नयन का, मुझको इसका शोक नहीं।
शोक नहीं कि बना नहीं मैं, तेरी साँसों की इक लय भी
शोक नहीं कि बना न धड़कन, शोक नहीं ना बना हृदय भी
बाँध के तुझको बनूं विजेता, मेरी ऐसा चाह नहीं।
जीतूँ द्वापर और त्रेता, मेरी ऐसी चाह नहीं।
मेरी चाह नहीं कि तुझको, मैं अपने कण-कण में कर दूँ
चाह मेरी बस यही अधूरी, तुझको मैं अब अर्पणकर दूँ
आसक्त नहीं अब तेरी राहें, मैं तुझसे आसक्त नहीं हूँ
आसक्त नहीं अब तेरी बाँहें, मैं तुझसे आसक्त नहीं हूँ
आसक्त नहीं अब तुझसे मैं हूँ, मरीचिका अब रोक नहीं हैं
चला अड़िग सन्यासी पथ पर कि उसका अब ये लोक नहीं है।

जब तक घर भरता है अपना हम खाली हो जाते हैं
इस दुनियादारी का कितना मँहगा मोल चुकाते है।
-हस्तीमल हस्ती

फतेहगढ़ (उ.प्र.) में जन्में अब्बास रज़ा अल्वी की उच्च शिक्षा अलीगढ़ विश्वविद्यालय व मास्को में हुई। 'दूरियां' शीर्षक से उनकी कविताओं की एक सी.डी. बाज़ार में है तथा 'गंगा व गिरमिट' नामक अन्य सी.डी. निर्माणाधीन हैं। वे सिडनी (आस्ट्रेलिया) में आयात-निर्यात के व्यवसाय में हैं और वर्तमान में आस्ट्रेलिया-इंडिया चैम्बर ऑफ कामर्स के अध्यक्ष हैं।

फिर तेज़ हवा का!

अब्बास रज़ा अल्वी

फिर तेज़ हवा का ये झोंका सावन की याद दिलाता है
शायद तुमने फिर याद किया चिट्ठी का रंग बताता है।
शायद अमिया के पेड़ों पर फिर बौर नया लग आया है
कोयल की गूँजी कू कू ने हर गीत मेरा दोहराया है।
फिर पक्षी डाल पे डोला हो हर गुंचा-गुंचा झूला हो
बीते बचपन की यादों में क्यों बिछुड़ा पल तड़पाता है।
फिर तेज़ हवा का ये झोंका सावन की याद दिलाता है।
शायद पीपल की छाँवों में एक याद सताने लगती हो
बीते बचपन की बातों में ये बात रुलाने लगती हो
क्यों रिश्ते-नाते टूट गए क्यों साथी सारे छूट गए
किस्मत ने कैसी चाल चली क्यों हर पल तुम्हें बुलाता है
फिर तेज़ हवा का ये झोंका सावन की याद दिलाता है।

चमका है जो चरागों की लौ-लौ निचोड़ के
वो रोशनी भी देगा तो आँखों को फोड़ के।
-महेश अश्क

22जून, 1973 को इलाहाबाद (उ.प्र.) में जन्में रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर' भौतिक विज्ञान में परास्नातक हैं। साहित्य के अतिरिक्त खेलों में भी समान रूचि रखने वाले 'मधुकर जी' सम्प्रति ओमान इंडिया फर्टिलाइज़र, कम्पनी, सूर (ओमान) में कार्यरत है।

ग़ज़ल

रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर'

बढ़ाया प्रेम क्यों इतना न जब इसको निभाना था
दिलों के तार क्यों जोड़े इन्हें जब तोड़ जाना था।
खिले मेरे चमन में क्यों सुगंधित फूल बनकर के
हवाओं के थपेड़ों से जो तुझको सूख जाना था।
समंदर की तरंगों में फिर इतना जोश क्यों आया
मिलाकर हाथ दो पल में जो तुमको दूर जाना था।
तुम्हारी शोख-सी नज़रें मुझे महफिल में क्यों लायी
मेरे आने पे जब तुमको मुझी से मुँह छिपाना था।
दिया क्यों तुमने फिर मुझको सहारा अपने आँचल का
अधूरी राह में हमदम तुम्हें जब रूठ जाना था।

वो मेरे घर नहीं आता मैं उसके घर नहीं जाता,
मगर इन एहतियातों से तअल्लुक मर नहीं जाता।
-वसीम बरेलवी

एल.एन. शुक्ला का जन्म 31 मार्च, 1946 को कानपुर में हुआ था। उन्होंने एम. ए., एल.एल.बी तक शिक्षा प्राप्त की है। दिल्ली निवासी श्री शुक्ला उत्तर प्रदेश के सेवानिवृत श्रम-प्रवर्तन अधिकारी हैं।

गायत्री माँ की आरती

एल. एन. शुक्ला

ऊँ जय गायत्री माता, मैया जय गायत्री माता।
तेरे सुमरन से दु:ख हरते, ऋद्धि-सिद्धि दाता।।
मैया जय गायत्री माता... ।।

चारों वेदों की तू जननी, महामंत्र की ज्ञाता।
आनन्द-मंगल करुँ आरती, जय गायत्री माता।।मैया जय...

तेरी महिमा बड़ी निराली, करती सबकी रखवाली।
भूले-भटके अज्ञानी को, राह दिखाने वाली।।मैया जय...

ज्ञान प्रदान करे तू माता, सबकी भाग्य-विधाता।
तेरी शरण में आकर माता, भव सागर तर जाता।।मैया जय...

अपरम्पार तेरी महिमा है, सबको पार लगाया।
कोटि-कोटि सूर्यों का तुझमें, अद्‌भुत तेज समाया।।मैया जय...

अपनी कृपा-किरण से माता, मेरा मन उज्ज्वल कर दो।
निशदिन माँ तेरी करूँ वंदना, ऐसा मुझको वर दो।।मैया जय...

जो कोई मैया आरति तेरी, भक्ति सहित गाता।
ज्ञान-चक्षु खुल जाते, यश-वैभव पाता।।मैया जय...

तुम्हारे शहर का मौसम बडा सुहाना लगे
मैं एक शाम चुरा लूं अगर बुरा न लगे।
-कैमरुल जाफ़री

शेर

काफी दिनों जिया हूँ किसी दोस्त के बगैर
अब तुम भी साथ छोड़ने को कह रहे हो, खैर।
-फ़िराक़ गोरखपुरी

इतने दिन के बाद मिले हो, फिर भी इतनी दूरी है
दिलवालों के आगे मौला, ये कैसी मज़बूरी है।
-सुनील जोगी

इस अहद के इंसां में वफा ढूँढ़ रहे हैं
हम ज़हर की शीशी में दवा ढूँढ़ रहे हैं।
-राजेश रेड्डी

अबके सावन में शरारत ये मेरे साथ हुई
मेरा घर छोड़कर कुल शहर में बरसात हुई।
-नीरज

अपनी चाहत का यूं पता देना
सामना हो तो मुस्करा देना।
-रफीक जाफ़र

ज़िंदगी के उदास काग़ज पर, दिल का पैगाम लिखने वाली थी
रोशनाई बिखर गई वरना, मैं तेरा नाम लिखने वाली थी।
-अंजुम रहबर

रोज़ तारों की नुमाइश में खलल पड़ता है
चाँद पागल है, अंधेरे में निकल पड़ता है।
-राहत इंदौरी

मुझसे बिछड़कर खुश रहते हो
मेरी तरह तुम भी झूठे हो।
-बशीर बद्र

भेजा है इक गुलाब किसी ने किताब में
जी चाहता है भेज दूँ मैं दिल जवाब में।
-मदनपाल

बड़ा मशहूर होता जा रहा हूँ
मैं खुद से दूर होता जा रहा हूँ।
-नदीम सिद्दीकी

मैं तो बोझ लिए कंधों पर खड़ा रहा तनहा
लोग मेरे पैरों से चलकर पहुँचे कहाँ-कहाँ।
-सिब्बन बैजी

मुझसे बिछड़कर वो भी रोया, मेरा भी जी हल्कान हुआ
एक ज़रा-सी ज़िद के पीछे दोनों का नुकसान हुआ।
-शकील जमाली

पंजे से कोई वक्त के बचकर कहाँ गया
मिट्टी से पूछिए कि सिंकदर कहाँ गया।
-वीरेन्द्र कुंवर

दिल पे मुश्किल है बहुत दिल की कहानी लिखना
जैसे बहते हुए पानी पे हो पानी लिखना।
-कुँअर बेचैन

पारस-स्मृति-समारोह की रपट

मानववादी दृष्टिकोण से जुड़ा है प्रसून जी का साहित्य - सुखदेव राजभर

सुपरिचित कवि और शिक्षाविद् पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की प्रथम पुण्यतिथि स्मृति-समारोह 23 जनवरी, 2009 को सी. एम. एस. सभागार, गोमती नगर, लखनऊ में सम्पन्न हुआ। समारोह के मुख्य अतिथि उत्तर प्रदेश विधानसभाध्यक्ष सुखदेव राजभर थे। अध्यक्षता उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. शम्भूनाथ ने की।

समारोह का प्रारम्भ राजभर और डॉ. शम्भूनाथ ने दीप-प्रज्ज्वलन करके किया। पारसजी के कविता-संग्रह 'स्वर बेला' तथा त्रैमासिकी 'पारस पखान' के प्रवेशांक का लोकार्पण मुख्य अतिथि ने किया।

पाठकजी की स्मृति में शुरू किए 'पारस शिखर सम्मान' और 'स्वर बेला युवा सम्मान' वरिष्ठ गीतकार संतोषानंद तथा व्यंग्यकार सुरेश अवस्थी को दिए गए। इन सम्मानों के अंतर्गत क्रमशः 11 हज़ार व 51 सौ रुपए, स्मृति चिह्न तथा अंगवस्त्र प्रदान किए गए।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि ने कहा कि साहित्य जनमानस में संस्कारों को बढ़ाता है, लेकिन आज का मानव साहित्य व संस्कार दोनों से ही दूर होता जा रहा है। कवि पंडित प्रसून का मानवतावादी दृष्टिकोण से जुड़ा साहित्य भी इस बात की पुष्टि करता है।

पंडित जी के सुपुत्र अनिल कुमार पाठक ने उनके कविता-संग्रह के विषय में जानकारी देते हुए कहा कि 'स्वर बेला' की अधिकांश रचनाएं उनके बाल्यकाल से सम्बंधित हैं, उनकी रचनाएं जीवन के हर पहलू को छूती हैं। संग्रह की कविताओं में विषय की विविधता के साथ शैली-वैविध्य भी है।

कार्यक्रम के अंत में एक कवि सम्मेलन का आयोजन भी किया गया, जिसमें संतोषानंद, डॉ. सूर्य कुमार पाण्डे, डॉ. सुरेश अवस्थी, डॉ. सुनील जोगी, डॉ. सुमन दुबे, कमल सक्सेना तथा कमलेश ने काव्य-पाठ किया ।

संचालन प्रसिद्ध हास्यकवि डॉ. सुनील जोगी ने किया।

'स्वर बेला'

हेमंत द्विवेदी

आचार्य पारसनाथ पाठक मेरे आत्मीय सहपाठी अरुण तथा अनन्य सहकर्मी अनिल के पिता हैं, जिनके एकमात्र स्फुट काव्य संग्रह 'स्वर बेला' का विमोचन भारतीय स्वधीनता संग्राम के पुंजीभूत ज्वाल नेताजी सुभाष के जन्म दिवस 23 जनवरी, 2009 को हुआ। ये महज इत्तेफाक नहीं कि बाबूजी की प्रथम पुण्य तिथि नेताजी के जन्मदिवस पर पड़ी। 'स्वर बेला' की अधिकांश रचनाएं जीवन के आरम्भिक काल में लिखी गयीं तथा मृत्योपरांत प्रकाशित हुई। यानीकि एक स्वर जो वीणा पर बहुत पहले निकलना था, वह निकला तो जरूर; किंतु हमें 60 वर्ष बाद सुनाई दिया और वादक चुपचाप सामने रखी वीणा को देखता रहा।

सत्य के प्रति ऐसा आग्रह, संघर्ष की ऐसी तपश्चर्या, लोकमंगल के प्रति ऐसी सतर्कता-यही सब तो था, जो उस 'स्वर बेला' में वीणा से ध्वनित हुआ था। तभी तो मैंने कहा कि सुभाष बोस के जन्मदिन पर ही बाबूजी का प्रयाण-पर्व मात्र संयोग नहीं था। आचार्य पाठक खुद कहते हैं कि जटिलताओं ने जीवन दुरुह और शुष्क कर दिया, काव्य धारा भी न जाने क्यों शुष्क-सी होती गयी। सत्य के प्रति कैसा अटूट आग्रह है इस सम्बन्ध में। और संघर्ष भी विशिष्ट है -

चल सको तो चल सको इन पत्थरों पर
अन्यथा संसार पथ पर पुष्प बिखराता नहीं।

जीवन के, परिवार के, समाज के सभी 'शेड्स' 'स्वरबेला' की 26 कविताओं में उपलब्ध हैं। कवि की वैयक्तिक अनुभूतियां हों या समाज की असमानता या राष्ट्र का संकट, कवि प्रत्येक स्थल पर शब्दों को अस्त्र की भांति हाथ में लेकर मुठभेड़ करने को प्रस्तुत है। आचार्य पाठक उन कवियों में थे, जिनका व्यक्तित्व कविता के छंदों में घुल-मिल गया है।

वे धर्मवीर भारती तथा बच्चनजी से प्रभावित रहे हैं। यत्र-तत्र कहीं शिल्प-साम्य दिख जाता है, किन्तु अनुभूतियाँ उनकी अपनी हैं। उनमें किसी का साझा नहीं है। विरह-वेदना के बावजूद प्रेमी की निठुराई जैसे तकदीर में लिख उठी हो-

चला गया प्रवाह-सा, छोड़ एक आह-सा
समीर काँप-सा उठा, भर रहा उसांस-सा
देखता ही रह गया, तारकों का श्वेत दल
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल

प्रकृति के माध्यम से कैसा 'स्वीप ऑफ इमेजिनेशन' है। अनुभूतियों का परिस्थियों से कैसा व्याघात है!

इस राग-विराग, सुख-दु:ख और समाज-राष्ट्र की चरम परिणित हुई है 'आदमी' में। हृदय और मस्तिष्क का द्वंद्व पुराना भी है, नया भी। प्रगति के साथ कुछ खो भी जाता है। इस प्रगतिशील मानव का चरम क्या होगा? क्या बुद्धि बढ़ने के साथ-साथ शुष्क होते जाना अपरिहार्य है? क्या 'हृदय के उन्मुक्त द्वार' बीते जमाने की बात जायेगी? मुक्त मानव कल्पना में होंगे? गौतमबुद्ध अब जन्म नहीं लेंगे? हिमालय के शिखर और सिन्धु की अतल गहराइयों के बीच अब कोई सम्पर्क-धागा नहीं बचा?

प्रसूनजी 'आदमी' में इन्हीं प्रश्नों से जूझते हैं। वे चेतना में बुद्धि और प्रेम दोनों का योग आवश्यक मानते हैं। मात्र बुद्धिवादी-चेतना संदेह के कगार पर पहुँच जाती है। 'सर्वशक्तिमान' होकर भी मानव, प्रकृति के सम्मुख बहुत कमज़ोर है। संघर्ष व उत्पात से दिनोंदिन उसका रक्तचाप बढ़ रहा है। 'स्ट्रेस' एक समस्या है। अनियमित खान-पान, 'स्ट्रेस', धन और वैभव की ईश्वरता के पुजारियों ने अपने को कुछ ज्यादा ही नीचे गिराने का आग्रह कर रखा है। पूर्णता की अटूट जिज्ञासा उसे नीचे धकेल रही है ।

पहले भवसागर कल्पना में था, आज सम्मुख है। शुष्क जीवन की लाठी पकड़कर बुद्धि उसे पार नहीं कर पा रही है। हृदय का कम उपयोग हृदयाघात का कारण बन रहा है। 'प्रसून' सतर्क दृष्टि से निरीक्षण कर रहे हैं-

सोच ले तू, आदमी
अब भी बहुत कमजोर है-

राष्ट्र के पास यदि मुक्त हृदय नहीं होता, तो क्या लाभ नगरों में कंक्रीट का साम्राज्य खड़ा करने का या देहात में सड़कों का जाल बिछाने का!

ताज्जुब है कि इतने 'किलर इन्सटिन्क्ट' वाली कविता कोमलकांत भावनाओं वाले प्रसून जी ने लिखी। परंतु ताज्जुब की कोई बात नहीं। जो व्यथित हुआ है, जिसने झेला है, वह अभिव्यक्ति तो करेगा ही। इसलिए कवि 'कल्पना से', 'अंतर' और 'देश चाहता ऐसा मानव' नामक कविताओं में हुंकार भरता है। कवि के ही स्वर में आज देश भी जैसे किसी महामानव की प्रतीक्षा कर रहा है। ऐसी हुंकार कोई 'विवशता' में ही भरता है, जो 'इस पार भी हो, उस पार भी हो'। जो स्वप्न के संसार को भी देख रहा हो तथा जो नाश के बाद निर्माण करने की सामर्थ्य भी रखता हो। जो भावों की मधुलहरी को दरकिनार कर अंगारों पर चलता हो।

वस्तुत: भारतीय परम्परा में सार्थक जीवन का आधार दो विरोधी तत्वों के बीच संतुलन में माना गया है। हृदय और बुद्धि का संतुलन, वासना और तपश्चर्या के मध्य संतुलन, दो अतियों के बीच संतुलन। जबकि धीरे-धीरे हमारा समाज 'टार्गेट ओरियन्टिड' होता जा रहा है। सार्वजनिक स्तर पर विकास को ही लें। विकास दो तरह का मान सकते हैं- भौतिक एवं मानसिक। हम साठ वर्षों से भौतिक विकास के पीछे पड़े हैं, मानसिक विकास पीछे छूट गया है। भौतिक विकास यानी बिजली, पानी, सड़क, अस्पताल, रोज़गार, जिसका अर्थ है - उच्चजीवन स्तर। मानसिक विकास यानी शिक्षा, सामाजिक एवं नैतिक मूल्य; जिसका टार्गेट है - मुक्त हृदय। भौतिक विकास अपेक्षाकृत सरल है, मानसिक विकास एक जटिल प्रक्रिया है। देश का भौतिक विकास मतदाताओं को रिझाता है, मानसिक विकास मतदाता को जागरूक बनाता है। अब आप ही बतायें कि किसको वोट देंगे?

'लगे रहो मुन्नाभाई' की इसी प्रवृत्ति के खिलाफ सतर्क आचार्य पाठक ने अपनी लेखनी को हथियार बनाया है। उन्होंने विद्वेष को झेला। जीवन में दुरुहता और शुष्कता भर ली। काव्यधारा भी शुष्क हो चली, किंतु हृदय ने ही प्रसूनजी को इतनी शक्ति प्रदान की कि वे वेदनाओं पर कलम चलाते समय भी सुख की अनुभूति कर सकें। तभी तो यह अनुभूति पाठक तक प्रेषणीय हो सकी। वे कहते हैं कि कवि वही नहीं है, जो कविता रचता है; कवि वह भी है जो कविताओं का आत्मविभोर होकर आनंद लेता है।

'स्वर बेला' के 'तथागत बुद्ध' कविता से ली गयी इन पंक्तियों के साथ ही मैं आचार्य पाठक के चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धांजलि निवेदित करता हूँ-

मुक्ति के आवास हो तुम
साधना के दूत जैसे
कौन हो तुम डालते
मधुमास का उल्लास जग में।

हँसी की कतरनें

फायर ब्रिगेड कार्यालय में फोन का रिसीवर उठाने पर दूसरी तरफ से घबराई हुई आवाज़ आई- ''कृपया शीघ्र आइए, भयंकर आग लगी है।''
''कहाँ?''
''जी दिल में, और कहाँ?''
''रांग नम्बर'' कहकर फोन रख दिया।

– o)-(o –

''डॉक्टर साहब, सुना है, आजकल साँप काटने का इलाज हो जाता है?''
''सबका इलाज है।''
''कुछ तो ऐसा ज़रूर होगा, जिसका इलाज नहीं।''
''हाँ! औरत के काटने का कोई इलाज नहीं है।''

– o)-(o –

पुलिस - ''तुम सड़क पर चलते हो, तो हाथ में नोटबुक क्यों लिए रहते हो?''
यात्री-''इसलिए कि अगर मैं किसी मोटर के नीचे दब जाऊँ, तो उसका नम्बर नोट कर पुलिस को सूचना दे सकूं।''

बाबू (भिखारी से)- ''तू भीख क्यों माँग रहा है, कोई काम क्यों नहीं कर लेता?''
भिखारी -''सरकार काम तो तभी करूं, जब इस पेशे से फुर्सत मिले।''

– o)-(o –

एक आदमी भीड़ भरे कॉफी हाऊस में काफी पीकर उठा और कुछ सिक्के छोड़कर चला गया। कॉफी लाने वाली लड़की ने सिक्के चुपचाप अपनी ज़ेब के हवाले कर दिये और तुरन्त इधर-उधर देखा, तो उसे मालूम हुआ कि मैनेजर ने उसे देख लिया है।
लड़की कुछ क्षण हिचकिचाई, फिर खेद से सिर हिलाकर बड़बड़ाने लगी - ''कैसे-कैसे लोग आ जाते हैं, टिप के पैसे फेंक गया, पर कॉफी के पैसे चुकाये ही नहीं।''

– o)-(o –

बस स्टाप पर एक बच्चे को रोता देखकर कंडक्टर ने पूछा - ''बेटे क्या हुआ?''
''मेरा रुपया, जिससे मैं टिकट खरीदता खो गया।''
''चलो, मैं तुम्हें फ्री ले जाऊंगा।''
बस में बैठकर लड़का एक बार फिर रोने लगा, तो कंडक्टर ने पूछा-''अब क्या हुआ?''
''मेरे सत्तर पैसे कहाँ हैं, जो रुपये में से बचने थे।''
बच्चे ने सुबकते हुए कहा।

हिन्दुस्तान

नज़र

छोटी खबर बड़ा असर

'स्वर बेला' और 'पारस परवान' का लोकार्पण

कबीर टाइम्स

30 जनवरी से 05 फरवरी 2009

कवि 'प्रसून' की प्रथम पुण्यतिथि श्रद्धापूर्वक मनाई गई

दैनिक जागरण

24 जनवरी शनिवार 2009

सीएमएस गोमतीनगर में पुण्य तिथि समारोह का दीप जलाकर उद्घाटन करते विधान सभा अध्यक्ष सुखदेव राजभर व हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डा. शंभुनाथ

'संस्कारों को बढ़ाता है साहित्य'

पुण्य तिथि

लखनऊ, 23 जनवरी (संवाद सूत्र) : साहित्य जनमानस में संस्कारों को बढ़ाता है। आज का मानव संस्कार व साहित्य दोनों से दूर होता जा रहा है। प्रसून का मानवतावादी दृष्टिकोण से जुड़ा साहित्य भी इस बात की पुष्टि करता है। यह बात विधानसभा अध्यक्ष सुखदेव राजभर ने शुक्रवार को पारस नाथ पाठक की प्रथम पुण्य तिथि के अवसर पर कही। गोमती नगर स्थित सिटी मांटेसरी स्कूल में आयोजित इस समारोह में शिक्षाविद एवं कवि पारस नाथ पाठक 'प्रसून' की कविताओं के काव्य संग्रह 'स्वर बेला' और काव्य त्रैमासिक 'पारस पखान' का लोकार्पण भी किया गया। समारोह में उपस्थित उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डा.शंभुनाथ ने बताया कि प्रसून द्वारा रचित स्वर बेला काव्य संग्रह की अधिकांश रचनायें उनके बाल्यकाल की हैं लेकिन वह जीवन के हर पहलू को छूती हैं। कार्यक्रम में गीतकार संतोष आनंद को पारस शिखर सम्मान और व्यंगकार सुरेश अवस्थी को स्वर बेला युवा सम्मान प्रदान किया गया। समारोह में आयोजित अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में संतोष आनंद, डा.सुरेश अवस्थी व डा.सुमन दुबे सहित अन्य ने कविताओं का पाठ किया।

कला मेले का समापन : महाविद्यालय प्रांगण में चल रहे कला मेला के समापन मौके पर नाटक बाल विवाह का मंचन हुआ। इसके बाद यायावर रंग मंडल ने 'मुमकिन' नुक्कड़ नाटक किया। इसमें एड्स से बचाव के बारे में छात्र व दर्शकों को जागरूक किया गया। इसके बाद भूपेन्द्र कुमार अस्थाना की गजल ने श्रोताओं की खूब वाहवाही लूटी। तीन दिवसीय मेले में करीब 50 हजार रुपये की पेंटिंग, लैंडस्केप, स्केच आदि की बिक्री हुई है।

राष्ट्रीय स्वरूप

लखनऊ 24 जनवरी 2009 — 3

पारस नाथ पाठक 'प्रसून' की प्रथम पुण्यतिथि स्मृति समारोह में विख्यात गीतकार संतोष ... शिखर सम्मान से सम्मानित करते विधानसभा अध्यक्ष सुखदेव राजभर। छाया: राष्ट्रीय स्वरूप

आज
शनिवार २४ जनवरी २००९ सौर ११ माघ सं. २०६५ वि
'आज' लख

कवि पारसनाथ पाठक की प्रथम

गोमती नगर सी.एम.एस. सभागार में पारस नाथ पाठक की प्रथम पुण्यतिथि स्मृति समारोह का दीप जलाकर उद्घाटन करते विधान सभा अध्यक्ष सुखदेव राजभर साथ हैं शम्भू नाथ व ए.डी.एम. अनिल पाठक।

लखनऊ, शुक्रवार। प्रख्यात कवि एवं शिक्षाविद पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की प्रथम पुण्य तिथि पर आज विविध कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। प्रसून समिति के तत्वावधान में यह आयोजन सिटी मांटेसरी स्कूल की गोमती नगर शाखा में किया गया। इस उपलक्ष्य में विमोचन लोकार्पण, सम्मान समारोह एवं कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। अपर जिलाधिकारी नगर पूर्वी डा. अनिल कुमार के संयोजन में आयोजित समारोह में मुख्य अतिथि विधान सभा अध्यक्ष सुखदेव राजभर ने स्व. 'प्रसून' द्वारा रचित कविताओं के काव्य संग्रह 'स्वर बेला' का विमोचन किया। पत्रिका 'पारस-परवान' का लोकार्पण भी किया गया। हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डा. शंभुनाथ की अध्यक्षता में आयोजित समारोह में पारस स्मृति सम्मान से विभूतियों को सम्मानित किया गया। पारस शिखर सम्मान प्रख्यात गीतकार संतोष आनंद को प्रदान किया गया। स्वर बेला युवा सम्मान व्यंग्यकार डा. सुरेश अवस्थी को स्व. प्रसून के दो गीतों की संगीतमय प्रस्तुतियों के साथ शुरू हुए कवि सम्मेलन में कई नामी-गिरामी कवियों ने काव्य पाठ किया। कमल सक्सेना ने 'नदियां हैं खामोश समन्दर है प्यासा है' पढ़कर माहौल को काव्यमय बनाए। जबकि व्यंग्यकार डा. सूर्य कुमार पाण्डेय ने हंसी के फव्वारे छोड़ने वाली पंक्तियां प्रस्तुत की। डा. सुमन दुबे ने बदलते रिश्तों पर चोट की। जबकि डा. सुरेश अवस्थी ने साहित्यिक

अमर उजाला

कवि 'प्रसून' को भावभीनी श्रद्धांजलि

समारोह में संतोष आनंद और डा. सुरेश अवस्थी को सम्मान

स्व. पारस नाथ पाठक की प्रथम पुण्यतिथि पर शुक्रवार को स्मृति समारोह में काव्य कृति का लोकार्पण करते विधानसभा अध्यक्ष सुखदेव राजभर और अन्य।

राष्ट्रीय सहारा

संतोष आनन्द को पारस शिखर सम्मान

सीएमएस आडीटोरियम में संतोष आनन्द को पारस शिखर सम्मान व डा. सुरेश अवस्थी को स्वरबेला युवा सम्मान से सम्मानित करते विधानसभा अध्यक्ष सुखदेव राजभर।

स्वतंत्र भारत

...में साहित्य से मिलता है साहस : राजभर

प्रसूनजी की प्रथम पुण्य तिथि स्मृति समारोह में उनकी पुस्तक 'स्वर बेला' का लोकार्पण करते उ.प्र. विधानसभाध्यक्ष सुखदेव राजभर एवम् अन्य सम्मानित अतिथि

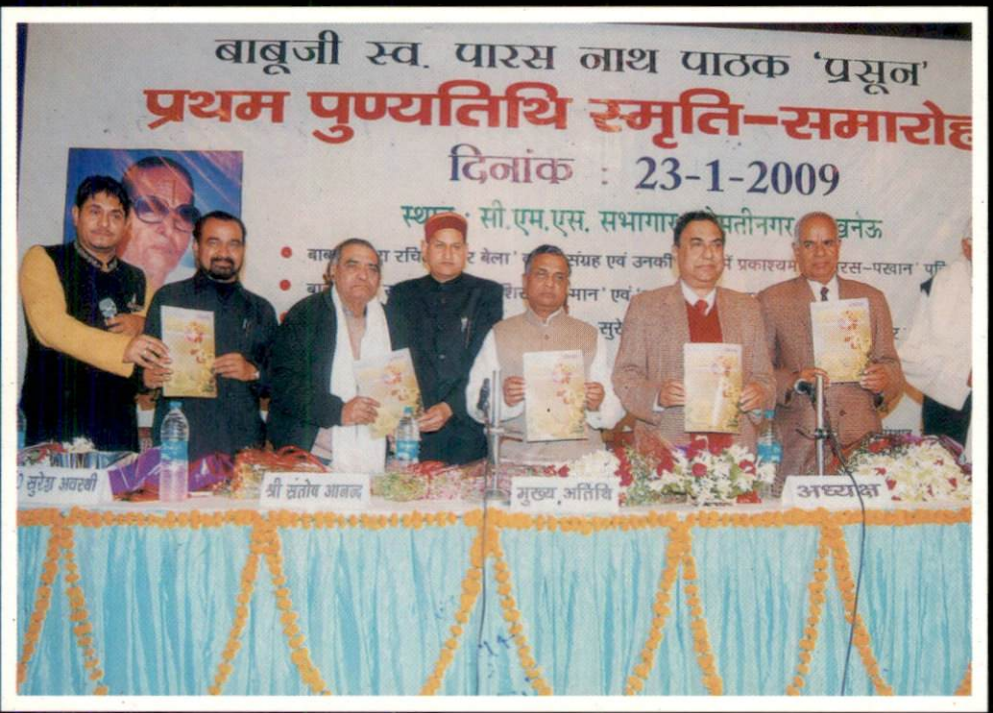

प्रसूनजी की प्रथम पुण्यतिथि स्मृति-समारोह में त्रैमासिक पत्रिका 'पारस पखान' का लोकार्पण करते हुए राजभरजी